

श्री अरविन्द कर्मधारा



ना जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

सत्ता में भागवत उपस्थिति का प्रथम संकेत है शान्ति ।

- श्री माँ

दिल्ली आश्रम अपना 61वां स्थापना दिवस मनाते हुए



जेल में श्री अरविन्द को श्री कृष्ण का मार्गदर्शन



तारा दीदी द्वारा रंगमंच के पात्रों से विचार विमर्श

ॐ आनन्दमयी चैतन्यमयि सत्यमयि परमे

श्री अरविन्द कर्मधारा

21 फरवरी 2017 — वर्ष 47— अंक 1

प्रार्थना और ध्यान

-श्री मातृवाणी

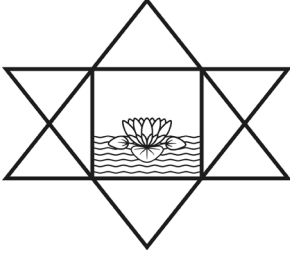
हर रोज, एक क्षण, एक नये और अधिक पूर्ण समर्पण का अवसर होना चाहिये और कर्म के बारे में भ्रमों से भरे, उत्साहपूर्ण, घबरा देने वाले, अत्यधिक सक्रिय समर्पणों का नहीं, बल्कि गहरे और नीरव समर्पण का जिसका दिखलायी देना जरूरी नहीं है पर जो सभी कर्मों में प्रवेश करता और उन्हें रूपांतरित कर देता है। हमारे एकाकी और शांत मन को सदा तेरे अंदर विश्राम करना चाहिये और उस शुद्ध शिखर से वास्तविकताओं का, क्षणिक और अस्थायी आभासों के पीछे शाश्वत, एकमात्र सद् वस्तु का ठीक-ठीक प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिये।



हे प्रभो, मेरा हृदय सारी व्याकुलता और परिताप से शुद्ध हो गया है; वह स्थिर और अचंचल है और तुझे सभी चीजों में देखता है और हमारे बाहरी कार्य कुछ भी क्यों ना हों, भविष्य के भंडार में हमारे लिये जो भी परिस्थितियां क्यों ना हों, मैं जानती हूं कि केवल तू ही जीता है, कि केवल तू ही अपने निर्विकार चिर स्थायित्व में वास्तव है और हम तेरे ही अंदर निवास करते हैं...।

वर दे कि समस्त पृथ्वी पर शांति हो !

श्री अरविन्द कर्मधारा



अरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा का
मुखपत्र

वर्ष: 2017

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर फकीर

सम्पादिका

देवी करुणामयी

सहसम्पादन

त्रियुगी नारायण

अपर्णा राँय

रूपा गुप्ता

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर,

कार्यालय

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली-शाखा

श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-

110016

दूरभाष: 26524810, 26567863

विषय - सूची

सम्पादकीय	3
आह्वान	5
-करुणामयी	
नववर्ष-ध्यान	7
-करुणामयी	
श्रीअरविन्द के पूर्णयोग का स्वरूप	9
श्री नारायण प्रसाद 'बिन्दु'	
प्रफुल्लता	17
श्रीमा'	
करुणामयी दीदी-एक दिव्य व्यक्तित्व	20
-रूपा गुप्ता	
श्रीअरविन्द - काव्य चयन	27
-(माण्डव्य के अनुध्यान से)	
अभियान के लिये आमंत्रण	28
-श्रीमाँ	
भय से मुक्ति-विधियाँ	33
श्रीमा'के वचन	
आंतरिक परिपूर्णता	35
श्री माँ	
एक महामानव की महायात्रा	40
-डॉ. के. एन. वर्मा	
हमारे पर्वत: हमारा गौरव	43
-रूपा गुप्ता	
गुरुमंत्र	50
-ज्ञानवती गुप्ता	
सावित्री	53
-'डा. मंगेश नाडकर्णी की वार्ताओं' से,	
गतिविधियाँ	61

सम्पादकीय

अत्यन्त खेद के साथ सूचित करना है कि हमारी कर्मधारा की संस्थापक सम्पादिका करुणामयी दीदी ने सदा सदा के लिये श्री मां की अनन्त शान्त गोद में रहने के लिये अपनी पार्थिव देह का 26 जनवरी को त्याग कर दिया। उनका व्यक्तित्व, उनके कर्म करने की अदम्य इच्छा हमें निरन्तर प्रेरणा देती रही है और देती रहेगी। इस अंक में हम उनके द्वारा दिये गये नववर्ष के संदेश, तथा साथ ही प्रत्येक युवा को प्रगति पथ पर बढ़ने के उनके आह्वान को प्रकाशित कर रहे हैं। 26 जनवरी 2017 को ही उनकी डायरी से, उनके द्वारा लिखे कुछ अंश प्रस्तुत हैं

हृदय सन्मुख है, तीर पर जा बैठी हूँ।
 लहरियाँ उठती गिरती और प्रवाह में
 लीन हो आगे बढ़ जाती हैं।
 मुझसे छिप जाती हैं।
 पर तभी सन्मुख
 नई लहरें आ प्रगट हो
 मुस्कानें लहरानें लगती हैं
 और मैं जब उन में
 रमने लगती हूँ वैसे ही
 वे दुबक ' कर ना जाने
 कौन से मंतर से खिंची
 किसके इशारे पर
 किस की अनंत प्रेममयी गोद में जा छिपती हैं।
 लीन हो जाती हैं
 पुनरोदय की धैर्य पूर्वक इंतजार करते हुए।
 और लहरों का खेल चलता जाता है।
 पर मैं तो वहाँ तीर पर सदा नहीं रह सकती ना!
 सो जो है उसे समेट उठ खड़ी होती हूँ-
 समय का पीछा करने के लिये!

करुणा दीदी की मधुर मुस्कान सदा हमारे मानस पटल पर अंकित रहेगी तथा उनके योगदान को हम सदैव याद करते रहेंगे।

2017 से अपने पाठकों के लिये हमने कर्मधारा में कुछ आमूल परिवर्तन किये हैं जिनमें सर्वप्रथम तो हमने 'कर्मधारा' को मासिक के स्थान पर तिमाही पत्रिका के रूप में निकालने का निर्णय लिया है। साथ ही अब से अपने पाठकों को श्री अरविन्द के चिन्तन और श्री माता जी के मार्गदर्शन की मूलधारा से जोड़े रखने हेतु हम प्रत्येक अंक में श्री अरविन्द व श्री माता जी के मूल लेख व उनके परम भक्त श्री सुरेन्द्रनाथ जी की कलम से उनके ससंमरण नियमित रूप से प्रकाशित करेंगे। साथ ही हमारा प्रयत्न रहेगा कि पाठकों को महाकाव्य 'सावित्री' का परिचय भी किसी ना किसी रूप में अवश्य प्रदान करते रहें जिससे वे श्री अरविन्द की इस अगम्य साधना की कर्मधारा से जुड़ कर उसे और अच्छी तरह आत्मसात कर सकें। दिल्ली आश्रम की गतिविधियों के बारे में भी हम आपको जानकारी देते रहेंगे। हम आशा करते हैं कि यह अंक आपके मानस को संतुष्टि प्रदान करेगा। इसके बारे में पाठकों के विचार और सुझावों का हम हृदय से स्वागत करते हैं।

शुभेच्छा के साथ!



Never forget that it is for the perfection of the work that we are striving, not for the satisfaction of the ego.

-The Mother

From Karuna Didi's diary: 26th January, 2017

आह्वान

-करुणामयी

संध्या का समय था। देव-मन्दिर में आरती हो चुकी थी। घंटे घड़ियालों की गूँज-अनुगूँज बन लोक-लोकांतरों में भ्रमण कर रही थी। एकादशी का व्रत एक सदगृहस्था ने एक ब्राह्मण तपस्वी को जीमने को लिये निमंत्रित किया हुआ था। वे थे अत्यन्त आचारवान स्वपाकी ब्राह्मण। गृहिणी से भोजन-सामग्री ले उन्होंने आहार सुयोगपूर्वक तैयार किया। इस आयोजन में रात का एक प्रहर बीत गया। माँ ने अपने शिशु को दूध पिलाकर पालने में सुला दिया।

पंडित जी ने विष्णु भगवान् की शालिग्राम की मूर्ति निकाली और भोग लगाने के हेतु आह्वान का मंत्र-जाप आरम्भ कर दिया। सुन्दर मधुर स्वर में स्रोत-पाठ से साधारण घर का वातावरण भव्य हो उठा। सभी भाव स्वर-माधुरी की गरिमा में लीन हो गये।

अचानक जब पुजारी ब्राह्मण ने आंखे खोलीं तो स्तब्ध। क्या देखते हैं कि एक सुन्दर, गौर शिशु आकर शालीग्राम जी के साथ बैठा है और उसका हाथ खीर के पात्र में डूबा है।

अरे! यह तो सब अशुद्ध हो गया। माँ भी आश्चर्य में डूब गई। झटपट बालक को उठाया व लेजाकर हाथ धुलाकर उसे पालने में लिटाया। अच्छा भला दूध पिलाकर सुला दिया था। कब यह उठा

और चारों हाथों पैरों से रिड़ता हुआ यहाँ ब्राह्मण-भोजन को छूकर व्यर्थ कर दिया। पंडित जी को दुबारा भंडार घर से लाकर भोजन-सामग्री दी और पुत्र के अज्ञान व्यवहार के लिए क्षमा माँगी।

पंडित जी ने सामग्री ली व दुबारा भोजन-आयोजन में लग गये। डेढ़-दो घंटे में उनका भोग तैयार हुआ। उन्होंने फिर भगवान् की मूर्ति निकाली। रात्रि की नीरवता में उनके मधुर कण्ठ से निकले स्रोत-पाठ के स्वर गूँजने लगे। घर के सभी जन भाव में डूब गये। ऐसा लगने लगा कि साकार भगवान् विष्णु श्रीकृष्ण के रूप में विराजमान हों। अंतिम कड़ी के साथ सबकी आँखे खुलीं तो देखा और चकित!

वही सुन्दर बालक ना जाने कब किस तरह अपने चारों हाथ-पाँवों से रिड़कता-रेंगता वहाँ पहुँचा होगा किन्तु इस समय फिर उसका दाहिना हाथ भोजन के बीच में था और वह मधुर-मंद स्मित में मुस्करा रहा था। उसकी छवि गरिमा विचित्र थी। किंतु सभी लोग आगत-समस्या को लेकर व्यस्त हो उठे। ओह! क्या आज इस निमंत्रित ब्राह्मण को प्रसाद ना मिल पायेगा? गृहस्थों का एकादशी व्रत क्या व्यर्थ ही हो जायेगा ?

हार्दिक क्षमा-याचना के बाद पंडित जी को फिर सीधा-सामग्री लाकर दी

गई। पंडित जी विचित्र उहापोह में थे। किंतु जीवन-भर के कर्मकांड की व्यवस्था व तपस्या कैसे अनायास ही भंग कर देते? तो भी अर्ध-रात्रि में भोजन की व्यवस्था करते समय भी रह-रहकर उस सुन्दर बालक की छवि, खीर में डूबा हाथ, भोजन चाटता मुखारविन्द उनके सामने आने लगा। जो भी हो, वे झल्ला ना पाये यद्यपि उनके भोजन तथा शयन में इतना व्याघात पड़ा था।

अब तीसरी बार पंडित जी ने फिर भोजन बनाया। अब तो संक्षिप्त-सा, खिचड़ी और खीर ही। तैयार होने पर आधी रात गये ठाकुर को भोग लगाने के लिए आह्वान-मंत्रों का स्रोत-पाठ प्रारम्भ हुआ। कितनी तन्मयता व भाव प्रवणता थी उनके आह्वान में। माता-पिता व ब्राह्मण देवता दिव्यता में सराबोर थे! जब सबकी

आँखें खुलीं तो फिर वही दृश्य! यह क्या हो रहा है?

माता सिहर उठीं- अरे! कहीं यह तो स्वयं बालकृष्ण ही नहीं हैं ? तो भी अतिथि-ब्राह्मण की दुविधा को देखकर उन्होंने झल्लाकर बालक को गोद में खींच लिया और बोलीं- "क्या है रे गौरांग ? कैसे आ जाता है तू बार-बार यहाँ और ब्राह्मण-देवता का भोजन छूकर भ्रष्ट कर देता है। आह! क्या करूँ मैं बालक ने कहा- "माँ ये स्वयं ही तो मुझे बुलाते हैं पर जब आकर भोग लगाता हूँ तो गुस्सा हो जाते हैं। सिहकर माँ ने अपने दिव्य बालक को आँचल में छिपा लिया।

किसी प्रकार पंडित जी को सीधा-सामग्री देकर दक्षिणा आदि से प्रसन्न कर पीछा छोड़ा और भगवान का प्रसाद स्वयं ही पाया।



नववर्ष-ध्यान -करुणामयी

1979 जानेवाला था। और 1980 का नवल वर्ष उदय होने को था। भागवत् धन्यवाद व कृपा-आह्वान का मंगल-मुहूर्त।

31 दिसम्बर, रात्रि साढ़े ग्यारह बजे। दिल्ली का कठिन शीत व वन्दना का विचित्र मुहूर्त भी भागवत्-सन्तानों को उनकी दिव्य एवं पावन गोद में दौड़ आने से ना रोक पाये।

सारा ध्यान-कक्ष खचाखच भरा था। भागवत्-प्रेम की कृपा की अनवरत वर्षा हो रही थी। अतिमानसी सुगंध से-उनकी दिव्य उपस्थिति से यह छोटा-सा ध्यान-मन्दिर (मैडिटेशन-हॉल) प्रतिमानसी चेतना का प्रकाश-पुञ्ज झिलमिला रहा था- जगमगा रहा था। उसी की शुभ्रता संलग्न किन्तु कुछ दूरी पर दृष्टिगत खुले प्रकाश के नीचे समाधि भी मानो जगती की ओर से अपनी निर्मल एवं दुग्ध-धवल बाहें पसार भागवत-अनुकम्पा का आह्वान कर रही थीं... या आश्वासन दे रही थीं। कौन जाने ...

मन्दिर के बाह्य-कपाट बंद हुए- प्रकाश अन्तर की गहराइयों की ओर उन्मुख होने लगा- सब अपने अन्तर-सरोवर की एक-एक सीढ़ी उतरकर पावनता के स्रोतों का आवाहन करने में तत्पर ' लीन हो गये। भागवत्-कृपा ' हाथ पकड़े लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करने लगी। और...

अन्तर की गहराइयों से उठता एक स्वर-एक पुकार...मानों धरती की ही चेतना साकार हो उठी... सृष्टि का आलोड़न - विलोड़न आरोह - अवरोह के आकार लेता ' सबकी भावनाओं - अभीप्साओं को समेटता ' एक चेतना रूप स्वर - नाद स्रष्टा के झिलमिल परदों को, प्रकाश को भेदने लगा। सम्पूर्ण सृष्टि की पुकार भगवत्ता को नीचे खींचने लगी - आग्रह से - आँसुओं से!

"आओ ना इस वृन्दावन में... कितने युग बीते...रास रचाओ... आनन्द - निकेतन बना दो इसे - सृष्टि को एकात्म कर दो... सपना साकार कर दो..."

फिर गहन ' मौन... पर कैसा ?... जिसमें अभीप्सा का आग्रह, दिव्य-कृपा का पल्ला रह - रहकर खींच रहा था। क्या ही मोहक छवि - मानो ऊपर से असंतुष्ट माँ भी लाड़ से मुस्करा उठी हों... फिर स्नेह पर मुहर - सी लगाती एक और सुर - मंजूषा का आह्वान...। और ध्यान-कक्ष प्रकाशमान हो उठा। नववर्ष के मंगल-मुहूर्त में भगवत्ता ने अपनी अप्रतिम कृपामयी मुस्कान से सबका अभिषेक कर दिया। पूर्ण-प्रकाश से ध्यान-मंदिर जगमगा उठा-आनन्द से सभी के अस्तित्व सराबोर हो उठे-भगवत्ता की मुस्कानों से उनकी संतानों के नयन दीप्त हो उठे-भागवत् स्मित की किरणें मुख पर खेलने

लगीं- उन्हें अपने दिव्य प्रेम के आँचल में दुलारने लगीं।

सभी उठ-उठकर उनके आशीर्वाद से अपने हृदय-कलश को भरने लगे। उनके प्रेम का मधुर प्रसाद माँ की प्रिय सन्तान व आश्रम के स्तम्भ श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर के हाथों पाने लगे। रसिकर - मिष्ठान-मंजूषा मानो उनकी कृपा से अक्षय-पात्र हो उठी। अर्पण-कर्ता श्री रमेश कपूर के हृदय की प्रत्येक व्यग्र धड़कन हर आने वाले के लिये बर्फी का दिव्य टुकड़ा बन-बनकर आने लगी।

किन्तु आज तो उनकी कृपा का व स्नेह का ओर-छोर ही ना था प्रत्येक के लिये मानो उसी के लिए विश्व अनुकूल रूप ले अपनी विद्युत् - तरंग तारा के द्वारा प्रत्येक के हाथों में उतरने लगा।

किसी को प्रातः दर्शन देती मुद्रा में आयीं - किसी के लिये मूर्तिमती करुणामयी बन, किसी को प्रकाश की मंजिलों की ओर अँगुलि-निर्देश करती,

किसी के लिए श्रीअरविन्द सहित पूर्ण - दर्शन की मुद्रा में, किसी को अज्ञात लोकों की यात्रा का निमंत्रण देतीं, और किसी के लिए अनन्त लोकों से अवतरण कर अंतिम सात सीढ़ियाँ उतरकर हमारे बीच धरती पर पधारतीं साक्षात ममता व ज्योतिर्पूजा आद्या - शक्ति मानवी माँ होकर... ऐसे कितने ही रूप एक - एक पर हरेक के लिए विशेष 'संसार में उतरने लग गये... सबको वे मनमाँगी मुराद - मूरत बन मिलीं। अतिमानस के रसिक अपने में मिठास भरे - दिव्य प्रेम की मधुशाला से आनन्द में झूमते अपने - अपने जीवन - कुञ्जों में बिखर गये।

भागवत् कृपा भव्य, विशाल प्रपात - सी हिमालय की गोदी में वेग से प्रवाहमान हो उठी। इस दिव्य सन्नाटे में - मूर्त शांति में सभी अभिभूत हो गये। साक्षात 'मंगल - रूप हो गये।

नववर्ष की बधाई देना-लेना ही भूल गये।



श्रीअरविन्द के पूर्णयोग का स्वरूप

श्री नारायण प्रसाद 'बिन्दु'

श्रीअरविन्द के पूर्ण योग को कुछ पृष्ठों में लिख कर समझाना गागर में सागर भरने की चेष्टा करना है। वह एक नवीन युग का शुभ संदेश है, एक ज्योतिर्मय भविष्य की सूचना है, एक नयी सृष्टि की योजना है, एक अभिनव दृष्टिकोण है। उनके पूर्ण योग को वैदिक ऋषियों की अध्यात्म-साधना की चरम परिणति कहना, उनके योग-यज्ञ की पूर्णाहुति समझना कविता नहीं, वास्तविकता ही होगी।

इस समय एक ऐसे योग की आवश्यकता थी जो पूर्व और पश्चिम में भूत और वर्तमान में सामंजस्य स्थापित करे, एक सेतु बाँधे, एक ऐसा ज्योतिमार्ग दिखाये जिससे ना हम अतीत के संचित धन से वंचित हों और ना आधुनिक युग की देन को छोड़ने के लिये बाध्य हों। पुराने आदर्श को फिर से वापस नहीं बुलाया जा सकता। पुरातन को उसी रूप में लौटा लाना असंभव है। काल-प्रवाह दूसरी ओर बह रहा है। पर हम प्राचीन को भूलना नहीं चाहते, हम उसके प्रभाव से प्रभावित हैं, उसके गौरव से गौरवान्वित हैं। उधर पश्चिमी सभ्यता के प्रति भी हमारा आकर्षण कम नहीं है। इससे प्रत्यक्ष है कि हम दोनों चाहते हैं, पर यह कैसे संभव हो सकता है। इस असंभव को संभव करने के लिये ही पूर्ण योग का आविष्कार हुआ है।

पूर्व और पश्चिम में एक और अन्तर है। पूर्व प्यासा है शाश्वत सुख का, पश्चिम भूखा है भौतिक सुख का। कहा है, भारत की भू से भी भक्ति की सुगंध आती है। भारत कभी भौतिक सुख का अनन्य पुजारी नहीं हुआ। सब कुछ पाकर, सब में रह कर भी, उसके भीतर एक अतृप्ति की आग सदा सुलगती रही है। उसकी दृष्टि ऊपर की ओर है। पूर्व की निश्चित धारणा है कि भौतिक पदार्थों से कोई कितना भी अपना घर क्यों ना भर ले, उनसे उसे पूर्णता की प्राप्ति नहीं हो सकती।

पूर्व की तरह पश्चिम में कोई योग को, आंतरिक उन्नति को विशेष महत्व नहीं देता। कुछ इने गिनों को छोड़कर, वहाँ की साधारण जनता का उद्देश्य रहता है जैसे भी हो ऐसी शक्ति प्राप्त करना कि पृथ्वी का सारा ऐश्वर्य जी भर के उपयोग किया जा सके, सबको देह, प्राण, मन से लूटा जा सके। अंतर्निहित सारी शक्तियों को विकसित करके सब कुछ यहीं पाना, कौन जाने वहाँ क्या है- यही रही है पाश्चात्य की मनोवृत्ति। इन दोमुखी भावों में, ज्योति और जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिये ही पूर्ण योग का जन्म हुआ है।

प्राचीन मत में सीमा के बन्धन को तोड़कर, देह- दासता से मुक्त होकर, असीम को पाना ही योग है। श्री अरविन्द ने योग का एक और अर्थ किया है। योग

की इस नूतन परिभाषा से, मानव की आध्यात्मिक साधना में एक क्रांतिकारी परिवर्तन- सा आ गया है। योग युक्त होकर कर्म करने की बात आज से पांच हजार वर्ष पूर्व श्री कृष्ण ने कही थी, पर वह बुद्ध के शून्यवाद और शंकर के मायावाद की बाढ़ में बह गयी। तब से अब तक योग सर्वसुलभ नहीं हो सका। योग के नाम से हमारे घर के लोग भागते रहे। इसका फल यह हुआ कि योग की संजीवनी बूटी से, सर्वरक्षिका शक्ति से हम वंचित हो गये और तम की कब्र में जा गिरे। श्रीकृष्ण के बाद किसी ऐसे महान् व्यक्तित्व का पादुर्भाव नहीं हुआ जो श्रीअरविन्द की तरह शंखनाद करे कि जीवन से युद्ध भी करना होगा और योग भी करना होगा, जीवन से भागना नहीं, जीवन को ही कुरुक्षेत्र बनाना होगा, कर्म में ही भगवान् को पाना और प्रकट करना होगा। यदि योग जीवन समृद्ध नहीं हुआ, साधारण जीवन के व्यर्थ चक्र से परित्राण पाने के लिए वह हमारे लिए रास्ता नहीं खो सका, तो योग की सार्थकता क्या?

श्रीअरविन्द ने अपने योग का नाम पूर्ण योग दिया है। अब देखना यह है कि वह किस भाँति सभी अंशों में पूर्ण हैं। प्रायः प्रत्येक योग ने एक अंग पर जोर देकर उसको ही पूर्ण रूप से सिद्ध करने की चेष्टा की है, और सब अंगों को केवल उसी एक भाव की पूर्ति के लिये छोड़ दिया है। अथवा दूसरे शब्दों में और सब अंगों को विकसित करने की ना चेष्टा ही की

जाती है ना उन्हें अवसर ही दिया जाता है। उदाहरणार्थ, हठयोग शरीर और प्राण को शुद्ध और सिद्ध करने में अपनी सारी शक्ति लगा देता है पर वह चित्त, मन, बुद्धि का विकास करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता। वेदांती, पुरुष को ले लेते और शक्ति को छोड़ देते हैं। श्रीअरविन्द का पूर्ण योग जीवन के प्रत्येक अंग को विकसित कर उसे प्रभु का उपयुक्त पात्र बना देता है। शरीर के अंदर अथवा बाहर कहीं कोई सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग भी नहीं रह जाता जिसमें प्रभु का निवास ना हो जाये। इस योग की एक बड़ी विलक्षणता यह है कि इतने प्रकार के योगों का तथा उनके मूल तत्वों का समन्वय इतने सुन्दर रूप से किया गया है कि हर एक को उसका उपयुक्त स्थान मिल गया है।

सत्ता के दो छोर हैं, एक छोर में है- भौतिक जड़ पदार्थ और दूसरे छोर में है आत्मा। हमारे आचार्यों ने इन दोनों में कोई एकता, कोई सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा नहीं की। उन की धारणा है कि दुनिया का त्याग किये बिना दुनिया के मालिक से भेंट नहीं हो सकती। पर बात ऐसी नहीं है। श्रीअरविन्द का कथन है कि आत्मा जड़ तत्व को बाहुपाश में बाँध सकती है और जड़ तत्व अपने अंतर्निहित सत्य को प्राप्त कर सकता है। सच्चिदानन्द ही जड़ में उतरे हैं और वही अपने-आपको प्रकट कर रहे हैं। जड़ में उनकी पूर्ण अभिव्यक्त युक्तिसंगत ही नहीं, अनिवार्य है। प्रकृति का क्रम विकास यही प्रदर्शित करता है।

जीवन का अंत मृत्यु नहीं हो सकता। जगन्मिथ्यावाद का खंडन करने के लिये श्रीअरविन्द ने सैकड़ों पृष्ठ लिखे हैं। वैदिक ऋषियों ने जगत् को मिथ्या कहकर कभी उसका तिरस्कार नहीं किया। राजा-महाराजा तक सुख के पलने में सोने वाले अपने पुत्रों को ऋषियों के आश्रम में धूनी तापने के लिये नहीं- संयत और उन्नत जीवन प्राप्त करने के लिये भेजा करते थे। जीवन से भागकर, जगत् को साँप की केंचुली की तरह त्याग कर हम जगत् के दोषों को दूर नहीं कर सकते। घर को सूना देखकर शैतान घुसेंगे ही। हमें जीवन की झंझा से जमकर जूझना होगा और उस पर विजय प्राप्त करनी होगी। जीवन-प्रदीप को आत्मा के आलोक से आलोकित करना होगा। इस प्रकार पूर्ण योग का उद्देश्य आर्य ऋषियों की विचारधारा का मूल्य-निरूपण मात्र नहीं है और ना इसका ध्येय गीता के तत्त्वों को प्रतिपादन करना ही है। नर और नारायण, जड़ और आत्मा, मर्त और स्वर्ग के बीच जो दुर्भेद्य चीन-दीवार खड़ी है उसे तोड़ना और उनमें एकता स्थापित करना ही है पूर्णयोग का चरम और परम लक्ष्य। यहाँ ना स्त्री-पुरुष का ना जाति-वर्ण का भेद है, ना काले-गोरे का सवाल है, ना पूर्व-पश्चिम का प्रश्न है। समग्र मानव जाति के लिये इसका द्वार खुला है।

अब यह देखना है कि पूर्णयोग भगवान् का कौन-सा स्वरूप हमारे सामने रखता है, उन्हें किस रूप में हमें साक्षात्कार

कराना चाहता है। प्राचीन योग के अनुसार यों तो हमें मन को मारकर ब्रह्म में लीन होना होता है या स्वर्गीय ऐश्वर्य लूटने के लिये बैकुंठ का टिकट कटाना पड़ता है। बुद्ध ने निर्वाण के आदर्श का प्रचार किया और शंकर ने ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या का। शंकर के ब्रह्म, बुद्ध के महाशून्य की तरह सर्वग्रासी नहीं थे, वे परम् ब्रह्म परमेश्वर थे, पर उनके मत से इहलोक को छोड़े बिना उस लोक की प्राप्ति नहीं हो सकती। रामानुज ने भूलोक और गोलोक दोनों को स्वीकार किया है पर उन दोनों में उन्होंने एक दुर्भेद्य अंतराल की कल्पना की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी ने सत्य को निर्गुण, निष्क्रिय रूप में देखा और किसी ने सगुण, सक्रिय रूप में, पर श्रीअरविन्द के मत से इनमें कोई विरोध नहीं है। मनुष्य की बुद्धि जिस तरह भगवान् का अव्यक्त, अनिर्वचनीय रूप देखना चाहती है, उसी तरह उसके प्राण भगवान् के माधुर्य का रसपान करना चाहते हैं। बुद्धि की तरह प्राणों के अधिकार को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, एक की उपेक्षा कर दूसरे को मानने से हमें सत्य की आंशिक उपलब्धि होगी, पूर्णता की प्राप्ति नहीं हो सकती।

पूर्ण योग उसे जगत् के आधार, जगत् के ईश्वर रूप में ही नहीं, बल्कि जगन्त्रियंता, जगन्मय के रूप में भी प्राप्त करना चाहता है। वह विश्वातीत होकर भी, विश्वव्यापी है, इसके कण-कण में परिव्याप्त है। इस प्रकार पूर्ण योग सत्य को, उपनिषद् के

पूर्ण ब्रह्म को हमें सगुण-निर्गुण, सक्रिय-निष्क्रिय, क्षर-अक्षर, परात्पर रूप में प्राप्त तो कराना चाहता है पर एक को दूसरे के लिये बलिदान करके नहीं। वह उस एक का ही हमें पूर्ण प्रकाश दिखलाना चाहता है और यही है सकी विलक्षणता।

भारत में मुक्ति के कई भेद हैं। अहेतु की भक्ति द्वारा भगवान् को बाँधकर मन के फण पर नचाना भक्त चाहता है, और अपनी इच्छाओं को भगवत्-इच्छा में लय करके साधर्म्य प्राप्त करना कर्मी चाहता है, पर ज्ञानी की खोज कुछ और है। वह चाहता है सायुज्य-मुक्ति। किन्तु श्रीअरविन्द धर्म, भक्ति और ज्ञान में कोई विरोध नहीं पाते। ज्ञान जब पूर्णता को प्राप्त होता है तो परम भक्ति का अभ्युदय होता है और पूर्ण ज्ञान से ही उन दिव्य कर्मों का सम्पादन होना सम्भव होता है जिससे नूतन सृष्टि की नींव पड़ती है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति के हाथ में पड़कर भगवदिच्छा कामना, वासना के रूप में परिणत हो जाती है। कामना की रस्सी को काटकर जो योगी भगवान् के आगे आत्म निवेदन करता है उसके भीतर से भगवदिच्छा बेरोक-टोक स्वयं अपना कार्य करने का सुयोग पाती है। इसके फलस्वरूप कर्म का एक नवीन स्रोत खुल जाता है।

पूर्ण योग सब धर्मों की तात्त्विक एकता को स्वीकार करता है और फिर उससे आगे बढ़ता है। श्री रामकृष्ण ने संसार को यह प्रत्यक्ष दिखा दिया था कि सभी धर्म मूलतः एक हैं। सभी नदियाँ जैसे सागर में

जाकर मिलती हैं वैसे किसी भी प्रचलित साधना के द्वारा हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि सभी धर्म उसकी ओर अंगुलि-निर्देश करते हैं पर उनमें से प्रत्येक किसी एक अंग पर इतना जोर देता है कि दूसरों को विकसित होने का अवकाश ही नहीं मिलता। उदाहरण के लिये, इस्लाम भगवान् की प्रभुता पर जितना जोर देता है उतना प्रेम पर नहीं देता जो ईसाइयों की आधारशिला है। वेदातीगण ज्ञान के अतिरिक्त और किसी पर, यहूदी (Jews) भगवान् के न्याय और कानून के सिवा और किसी पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते।

श्री रामकृष्ण प्रायः कहा करते थे कि द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद और अद्वैतवाद भिन्न-भिन्न नहीं, बल्कि एक ही सत्य के विविध पहलू हैं। फिर भी उनका सुझाव निर्विकल्प समाधि की ओर ही अधिक रहता है। जरा-व्याधि-ग्रस्त शरीर को वे फूटा ढोल कहते रहे, उसे शिवमन्दिर बनाने की बात उन्होंने कभी नहीं कही। उस आनन्दघन को उतारकर इस मन्दिर में, इस पृथ्वी पर बसाया जा सकता है, हमारे दैनिक जीवन में उसे मूर्तिमान् किया जा सकता है, यह सम्भवतः उनकी धारणा के भी परे था, और यही है दुनियां ने राम को समझा और उन्हें अपनाया भी, पर यह श्रीकृष्ण को, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व को, उनकी पूजा करके भी समझ नहीं सकी। ईसामसीह की लोक सेवा के व्रत को उसने जीवन में उतारा, परन्तु 'भगवान् का राज्य तुम्हारे अन्दर ही है' (The King

of Heaven is within you) यह आदर्श बनकर पुस्तकों में ही पड़ा रहा। जो अब तक नहीं हुआ उसी को सम्पादित करने के लिये पूर्णयोग की रचना हुई है।

ये हुई श्री अरविन्द के योग की कुछ तात्त्विक बातें। अब यह देखना है कि आर्य ऋषियों के द्वारा जो कुछ हमने पैतृक संपत्ति के रूप में पाया है उसका इसमें कैसे समावेश हुआ है।

इसमें हठयोग का सार हम इतने विस्तृत रूप में पाते हैं कि शायद वहाँ तक हठयोगियों की कभी कल्पना भी नहीं पहुँची हो। शरीर और प्राण पर अधिकार प्राप्त कर, उनके द्वारा भगवान् का स्पर्श प्राप्त करना ही हठयोगियों का उद्देश्य है। उन्होंने अभी तक जो सिद्धियाँ प्राप्त की हैं उनका यही परिणाम हुआ है कि वे अपने जीवन को एक काल तक परिवर्द्धित कर सके हैं, पर इस योग में हठयोग के मुख्य अंग शरीर में भी, जो कि अचेतन है, भागवत चैतन्य का अवतरण कर इसे इस प्रकार रूपांतरित कर दिया है कि वह जरा-व्याधि और मृत्युभय से मुक्त हो जाए। मन-बुद्धि को दिव्य बनाना बहुत ही सहज है पर पत्थर के समान इस जड़ शरीर में भगवान् के दिव्य चैतन्य को उतारकर नित्य रूप से निवास कराना कोई सहज बात नहीं है। विशेषता यह है कि पूर्ण योग के साधक को हठयोगी की भाँति एक अत्यंत कष्टकारी साधना में उतरना नहीं पड़ता, ना उसे विभिन्न आसनों को सिद्ध करने की आवश्यकता ही होती है। उसे

तो केवल अन्तरात्मा की अभीप्सा के साथ शरीर का संयोग कर देना पड़ता है और इस प्रकार शरीर भी अपने जड़ स्वभाव को छोड़ कर क्रमशः शुद्ध और उपयुक्त आधार बन जाता है।

राजयोगी यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के द्वारा मन को शांत करके ऊपर उठता है और समाधि-अवस्था में वह शांति प्राप्त करता है जो उसे मुक्ति तक पहुँचाती है। ऐसे सिद्ध योगियों में भी प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब उनके अन्दर काम, क्रोध आदि विकार उठते हैं तब वे अपनी शांति खो बैठते हैं। राजयोगी नैतिकता पर बहुत जोर देते हैं, परन्तु पूर्ण योग के साधक उसमें उतना समय व्यर्थ नहीं करते। इनकी प्रत्येक चेष्टा अपने अन्दर आध्यात्मिकता का विकास करने के लिये होती है। इनके सारे कर्मों का आरम्भ ही होता है आध्यात्मिकता से और आध्यात्मिकता के विकास के साथ-साथ नैतिकता स्वाभाविक रूप में अपने-आप आ जाती है। जो आध्यात्मिकता को प्राप्त कर चुका है वह कभी दुःशील नहीं हो सकता। परन्तु नैतिकता के ऊपर आध्यात्मिकता निर्भर नहीं करती। मन की शांति, चित्त की स्थिरता, प्राण की एकाग्रता हृदय की तन्मयता और शरीर के समस्त विकारों से निष्कृति ही पूर्ण की आधारभूमि है। ऐसा शांतिमय निश्चल आधार ही इस योग के पूर्ण स्थायित्व के लिये आवश्यक माना गया है। यह शांति

मन के भावों, भावनाओं, वासनाओं, चिंताओं और विचारों को कुचलकर नहीं प्राप्त की जाती, बल्कि साधना द्वारा क्रमशः ऐसी स्थिति स्वतः आ जाती है कि यह शांति साधक के स्वभाव का एक अंग बन जाती है और ऐसे शुद्ध, शांति, निश्चल और नीरव आधार पर ही ऊपर से भगवत आनन्द, प्रेम, ज्ञान का उतरना सहज हो सकता है और जो स्थायी रूप से टिक सकते हैं। इस प्रकार राजयोग का हम इसमें सुन्दर समावेश पाते हैं।

अब कर्मयोग को लीजिये। श्रीअरविन्द और किसी चीज़ पर इतना ज़ोर नहीं देते जितना कर्मयोग पर। वे कहते हैं कि यह संसार भगवान् का लीलाक्षेत्र है। वे इसके अणु-अणुमें विराज रहे हैं तथा उनकी इच्छा के विरुद्ध एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। कर्मयोग पर वे इतना ज़ोर देते हैं कि यदि हम कहें कि कर्मक्षेत्र से भागकर कोई इस योग का योगी नहीं बन सकता तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति ना होगी। श्रीअरविन्द का उद्देश्य जगत्याग, जीवनत्याग तथा कर्मत्याग नहीं है, बल्कि संसार में, मनुष्य जाति में, जीवन में, कर्म में भगवान् को मूर्तिमान् करना है। वासना और अहंकार ये दो ही अज्ञान की जबर्दस्त ग्रंथियाँ हैं। वासना से मुक्त होकर, फलाशक्ति से रहित होकर, अहंभाव से सर्वथा शून्य होकर, भगवान् का कार्य, भगवान् के हाथ का यंत्र बनकर, एकमात्र भगवान् के लिए ही करना पूर्ण योग में कर्मयोग है। देश हित, जातिहित, लोकहित के कर्म ही आजकल

निष्काम कर्म माने जाते हैं। पर जिसमें अहं और वासना से छूटने के लिये प्रयत्न ना हो वह गीता का कथित कर्मयोगी नहीं कहा जा सकता। जो कर्म अहं से छूटने के लिए तथा एकमात्र भगवान् के लिए ना किये गये हों वे ना तो यज्ञ रूप माने जा सकते हैं ना ऐसे कर्म हमारी शुद्धि ही कर सकते हैं। यदि कोई ठीक-ठाक भाव रखकर केवल निष्काम कर्म ही करता चला जाए तो एक कर्मयोग द्वारा ही वह आत्मचैतन्य को प्राप्त कर सकता है।

भक्ति ही भगवान् को विवश कर सकती है। भक्ति में ही यह सामर्थ्य है कि वह भगवान् को निकट खींच लाये। कहा है (**Knowledge obeys, Bhakti Compels**) अर्थात् ज्ञान आज्ञापालन करता है, भक्ति बाध्य करती है। पूर्ण योग का साधक जीवन का प्रत्येक कार्य प्रसन्नतापूर्वक भगवान् का चिंतन करता हुआ, भगवान् के लिये करता है। वह एक मुहूर्त के लिये भी भगवान् की स्मृति को अपने से दूर नहीं होने देता। इस प्रकार वह सब समय सब कुछ करता हुआ एकमात्र भगवान् की ही पूजा में सदैव रत रहता है। उसके लिये भगवान् के सिवाय और कोई वस्तु अपनी नहीं रह जाती। उसका संसार में रहना भी केवल भगवान् के लिये होता है। वह अपनी साधना को भी इस प्रकार वासना की बू से खाली कर देता है कि उसकी साधना का ध्येय अपने लिये निर्वाण या मुक्ति अथवा महानशक्ति प्राप्त करना नहीं होता, बल्कि अपने जीवन में एकमात्र भगवान् की इच्छा

की पूर्ति होता है। उसका हृदय भगवान् से इतना भरा रहता है कि वह सदा-सर्वदा केवल उनका स्पर्श ही नहीं प्राप्त करता बल्कि उसका व्यक्तित्व भी भगवान् में लीन हो जाता है, उसकी जगह केवल भगवान् ही रह जाते हैं और उसके जीवन में वही सब कुछ उसे अपना यंत्र बनाकर करते हैं साधक सर्वदा उनके साथ अविच्छिन्न एकता का अनुभव करता है जो वैष्णवों के श्रेष्ठ लक्ष्य के भी परे की वस्तु है। इस तरह इस पूर्ण योग में भक्तियोग भी पूर्ण रूप से ओत-प्रोत है।

पूर्ण योग में ज्ञान योग का समावेश इस प्रकार हुआ है कि प्रथम हमें अंतरात्मा को जागृत कर, उसे अज्ञान-सुषुप्ति से उठाकर सम्मुख लाने का जी-जान से प्रयत्न करना होता है। ज्यों-ज्यों साधना द्वारा कामना-वासना आदि की ग्रंथियाँ टूटती जायेंगी त्यों-त्यों उसे विकसित होने का अवसर मिलता जायेगा। ज्यों-ज्यों वह बाहर आती जायेंगी त्यों-त्यों उसके प्रकाश द्वारा बाधाएं हटती जायेंगी और मन-प्राण पर वह अपना प्रभुत्व जमाने की ओर अग्रसर होती जायेंगी। इस प्रकार उसके हृदय-सिंहासन पर निम्न प्रकृति की जगह आत्मा का अधिकार जम जायेगा और तब वह धीरे-धीरे चैतन्य को प्राप्त करने लगेगा। मैं कहाँ हूँ मेरी साधना किस ओर चल रही है, कौन सा कर्म भगवदनुकूल है, कौन सा भगवान् द्वारा प्रेरित होकर आया है, किसे हटाना, किसे अपने अंदर प्रवेश करने देना आदि बातें बताने में उसकी प्रस्फुटित

अन्तरात्मा बड़ी सहायता देती है। अन्त में यही अन्तरात्मा (**Psychic being**) उसे जीवात्मा से मिलाते हुए परमात्मा तक ले जाती है। श्री अरविन्द ने एक स्थान में कहा है कि यदि तुम मन प्राण को काबू में ला सके हो, अनुभवों का भंडार भर चुके हो, यहाँ तक कि शारीरिक सिद्धियों के द्वारा लोगों को चकित करने में भी समर्थ हो चुके हो, पर यदि अन्तरात्मा को साधना का प्रधान अंग बनने का अवसर तुमने नहीं दिया तो वास्तव में महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं हुआ। इसलिये इस योग में ज्ञान का अर्थ है, विश्वेश्वर की, जो व्यक्तिगत ईश्वर बनकर मनुष्य के हृदय में बैठे हैं, पूर्ण सत्ता में जीवन के प्रत्येक अंग में स्थापना करना।

अब इसमें तंत्र का रूप देखिये। शक्ति तो श्री अरविन्द के योग का मानों प्राण है। तांत्रिक, तंत्र-मंत्र की साधना के द्वारा शक्ति को जागृत करता है, परन्तु पूर्णयोग यह मानकर चलता है कि शक्ति प्रत्येक मनुष्य के ऊपर स्थित है और दयामयी जननी उसको शुद्ध तथा सिद्ध बनाकर प्रभु का एक सुन्दर यंत्र बनाना चाहती हैं। पर मनुष्य स्वयं उन्हें अवकाश नहीं देता कि वे उसे अधकूप से बाहर निकालें और इसलिये इस योग की साधना में शक्ति सर्वप्रधान है तथा शक्ति की शरण होना इस योग का प्रधान अंग है। इस योग में अपने को पूर्णतः माता के चरणों में समर्पित कर देना होता है और साधना का सारा भार उनके हाथों

में सौंप कर साधक निश्चित हो जाता है। जिसे माता के चरणों में भक्ति नहीं हुई, जो अपने को माता की कृपा प्राप्त करने के योग्य नहीं बना सका, माता के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार ना हो सका, मातृ प्रेम के रंग में रँगने में अपने को समर्थ ना बना सका, वह सुख से इस योग की यात्रा नहीं कर सकता तथा अपने बल पर प्रकृति की दुर्भेद्य माया को भेदकर उनकी दिव्य ज्योति की मन्दाकिनी को अपनी सत्ता के ऊपर प्रवाहित नहीं कर सकता। जिसे माता के चरणों में दृढ़ विश्वास और उनकी शक्ति पर पूर्ण निर्भरता हो गयी उसने मानों विजय यात्रा का वरदान प्राप्त कर लिया। अब उसे केवल असीम धैर्य तथा उत्कट

तत्परता और एकाग्रता के साथ कभी तेज कभी धीमी चाल से रास्ता समाप्त करना है। भय और निराशा को उसे तनिक भी अपने पास फटकने नहीं देना चाहिये। जिसे माता के प्रसाद की एक कणिका भी प्राप्त हो चुकी उसके लिये संसार में ऐसी कौन-सी बाधा है जिसे वह पार नहीं कर सकता? माता हमारी मदद करने के लिये, हमारी पुकार सुनने के लिये, हमारे संकट में अपनी दिव्य झलक दिखाने के लिये सदा तैयार रहती हैं, आवश्यकता है केवल उनके चरणों को दृढ़ता के साथ पकड़ने की। जो उन्हें अपने हृदय-मन्दिर में बैठाकर उनका पुजारी बन गया उसे एक दिन वह अवश्य ही मानवीय स्तर से उठाकर दिव्य स्तर पर बैठा देंगी।



प्रफुल्लता श्रीमां

किसी वर्षा प्रधान देश के एक बड़े शहर में एक दिन तीसरे पहर मैंने सात-आठ गाड़ियां बच्चों से भरी देखीं। उन्हें सवेरे ही गांवों की ओर खेतों में खेल-कूद के लिए ले जाया जा रहा था, पर वर्षा के कारण उन्हें समय से पहले ही वापिस लौटना पड़ा।

फिर भी बच्चे हंस रहे थे, गा रहे थे और आने-जाने वालों की ओर सोल्लास हाथ हिला रहे थे।

इस निराशा-भरे मौसम में भी उन्होंने अपनी प्रसन्नता बनाये रखी थी। एक उदास होता तो दूसरे अपने गानों से उसे प्रफुल्लित कर देते। जल्दी-जल्दी पास से निकलते राहगीर जब उनकी खिलखिलाहट सुनते तो उस क्षण उन्हें ऐसा प्रतीत होता मानों आसमान की काली घटा कुछ कम गहरी हो गयी हो।

खुरासान का एक राजकुमार था। नाम था अमीर। खूब ठाट-बाट की उसकी जिन्दगी थी। जब वह लड़ाई में गया तो उसके रसोई घर के सामान को लेकर तीन सौ ऊंट भी उसके साथ गये।

दुर्भाग्य से, एक दिन वह खलीफा इस्माइल द्वारा बन्दी बनालिया गया, पर दुर्भाग्य भूख को तो नहीं टाल सकता। उसने अपने मुख्य रसोइये को पास खड़े देखा और उस आदमी से कहा: "भाई, कुछ खाने को तो तैयार कर दे।"

उस बेचारे के पास केवल एक मांस का टुकड़ा बचा था। उसने उसे ही देगची में उबलने को रख दिया और भोजन को कुछ अधिक स्वादिष्ट बनाने के लिए स्वयं कुछ साग-सब्जी की खोज में निकला।

इतने में एक कुत्ता वहां से गुजरा। मांस की सुगंध से आकर्षित हो उसने अपना मुंह देगची में डाल दिया। पर भाप की गर्मी पा वह तेजी से और कुछ ऐसे बेढंगे तरीके से पीछे हटा कि देगची उसके गले में अटक गयी। अब तो घबरा कर वह देगची समेत ही वहां से भागा।

अमीर ने जब यह देखा तो उच्च स्वर में हँस पड़ा।

जो अफसर उसकी चौकसी पर नियुक्त था उसने पूछा: "यह हँसी कैसी? इस दुःख के समय भी तुम हँस रहे हो?"

अमीर ने तेजी से भागते हुए कुत्ते की ओर इशारा करते हुए कहा: "मुझे यह सोच कर हँसी आ रही है कि आज प्रातः तक मेरी रसोई का सामान ले जाने के लिए तीन सौ ऊंटों की आवश्यकता पड़ती थी और अब उसके लिए एक कुत्ता ही काफी है!"

अमीर को प्रसन्न रहने में मजा आता था यद्यपि दूसरों को प्रसन्न रखने के लिए वह उतना प्रयत्नशील नहीं था। फिर भी उसके विनोदी स्वभाव की प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते। यदि वह इतनी गम्भीर

विपत्ति में भी प्रसन्न रह सकता था तो क्या हम मामूली चिन्ता-फिकर में मुंह पर एक मुस्कराहट भी नहीं ला सकते?

फारस देश में एक स्त्री थी जो शहद बेचने का व्यवसाय करती थी। उसकी बोलचाल का ढंग इतना आकर्षक था कि उसकी दुकान के चारों ओर ग्राहकों की भीड़ लगी रहती थी। इस कहानी को सुनाने वाला कवि कहता है कि वह शहद की जगह विष भी बेचती तो भी लोग उसे शहद समझ कर ही उससे खरीद लेते।

एक क्रुद्ध प्रकृति वाले मनुष्य ने जब देखा कि वह स्त्री इस व्यवसाय से बहुत लाभ उठा रही है तो उसने भी इसी धन्धे को अपनाने का निश्चय किया।

दुकान तो उसने खोल ली पर शहद के सजे-सजाये बर्तनों के पीछे उसकी अपनी आकृति सिरके के समान खट्टी ही बनी रही। ग्राहकों का स्वागत वह सदा अपनी कुटिल भृकुटि से करता था। इसलिए सब उसकी चीज छोड़ आगे बढ़ जाते थे। कवि आगे कहता है: "एक मक्खी भी उसके शहद के पास फटकने का साहस ना करती थी।" शाम हो जाती, पर उसके हाथ खाली-के-खाली ही रहते। एक दिन एक स्त्री उसे देख कर अपने पति से बोली, "कडुआ मुख शहद को भी कडुआ बना देता है।"

क्या वह शहद बेचने वाली स्त्री केवल ग्राहकों को आकर्षित करने के लिये ही मुस्कराती थी? हम तो यही सोचते हैं कि उसकी प्रफुल्लता उसके भले स्वभाव का

एक अंग थी। संसार में हमारा कार्य केवल बेचना और खरीदना ही नहीं है; हमें यहाँ एक-दूसरे को मित्र बनाकर रहना है। उस भली स्त्री के ग्राहक यह जानते थे कि वह एक शहद बेचने वाली के अतिरिक्त कुछ और भी थी- वह संसार की एक प्रसन्नचित्त नागरिक थी।

अब मैं जिन महापुरुष की कहानी सुनाने जा रही हूँ उनकी प्रसन्नता ऐसे प्रवाहित होती थी जैसे एक सुन्दर झरने से पानी की धारा। इन्हें ना लाभ की इच्छा थी, ना रीति-रिवाजों की, ये प्रसिद्ध गौरवशाली राम थे।

राम ने दस शीश और बीस भुजाओं वाले रावण को मारा था। मैं तुम्हें इस कहानी का प्रारम्भ पहले बता चुकी हूँ। यह युद्धों में सबसे भयानक युद्ध था। हजारों बन्दरों और रीछों ने राम की सेवा में अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। उनके शत्रु-राक्षसों के शवों के भी ढेर लगे थे। उनका राजा निर्जीव पृथ्वी पर पड़ा था। ओह! उसे मार गिराना कितना कठिन था! कितनी बार वार-पर-वार करके रामचन्द्रजी ने उसके दस सिरों और बीस भुजाओं को काटा था, पर शीघ्र ही वे पुनः उत्पन्न हो जाते थे! उनको लगातार, एक के बाद एक, इतने अंग काटने पड़े कि अन्त में ऐसा प्रतीत होने लगा मानों आकाश से सिरों और भुजाओं की वर्षा हो रही हो।

जब यह भयानक युद्ध समाप्त हुआ तो वे सब बन्दर और रीछ जो लड़ाई में मारे

गये थे, जीवित कर दिये गये। वे ऐसे उठ खड़े हुए मानों एक बड़ी सेना आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ी हो।

यशस्वी राम का व्यवहार विजय के बाद सरल और शान्त था। उन्होंने अपने विश्वस्त मित्रों की ओर अपनी कृपापूर्ण दृष्टि उठायी।

तभी रावण के सिंहासन का उत्तराधिकारी विभीषण इन वीरों के लिए, जिन्होंने इतने साहस से युद्ध में भाग लिया था, एक गाड़ी-भर बढ़िया गहने और कपड़े ले आया।

राम बोले, "सुनो मित्र विभीषण! तुम ऊपर हवा में उठ जाओ और वहाँ से अपनी इस भेंट को सेना के सम्मुख बिखेर दो।"

विभीषण ने ऐसा ही किया। अपने रथ को वह ऊपर ले गया और वहीं से उसने सब चमचमाते गहने और सुन्दर रंग-बिरंगे कपड़े नीचे की ओर बिखेर दिये।

देखते-ही-देखते सब रीछ और बन्दर एक-दूसरे को धकेलते हुए इस गिरती हुई निधि के ऊपर टूट पड़े। एक अच्छा-खासा मनोरंजक तमाशा खड़ा हो गया।

राम और उनकी पत्नी सीता खिलखिला कर हँस पड़े। उनका भाई

लक्ष्मण भी उनकी हँसी में शामिल हो गया।

केवल वीर पुरुष ही इस प्रकार हँस सकते हैं। शुद्ध और सरल आनन्द से बढ़ कर प्रसन्नता देने वाली और कोई वस्तु नहीं है। वास्तव में 'प्रसन्नता' और 'साहस' अपने मूल रूप में एक ही हैं। जीवन के कठिन क्षणों में हार्दिक प्रसन्नता बनाये रखना ही एक प्रकार का साहस है।

निश्चय ही हर समय हँसने की आवश्यकता नहीं; पर प्रफुल्लता और स्वस्थ विनोद कभी भी ज्यादा नहीं होते। कितनी उपयोगी वस्तुएं हैं ये! यह इन्हीं का प्रभाव है कि मांघर को बच्चों के लिये आनन्दमय बना देती है; एक नर्स रोग को शीघ्र दूर करने में सफल होती है; स्वामी अपने सेवकों का काम सरल कर देता है; एक श्रमजीवी अपने साथियों में सद्भावना उत्पन्न कर देता है; यात्री अपने सहयात्रियों को उनकी कड़ी यात्रा में सुख पहुंचाता है; एक नागरिक अन्य नागरिकों के हृदयों में आशा को संजोये रखता है।

और तुम, प्रसन्नचित्त बालकों और बालिकाओं! अपनी प्रफुल्लता से क्या नहीं कर सकते?



करुणामयी दीदी-एक दिव्य व्यक्तित्व

-रूपा गुप्ता

26 जनवरी, 2017 को हमारी प्रिय करुणा दीदी इस नश्वर जगत को छोड़ कर सदा सदा के लिये श्री मां की गोद में रहने चलीं गयीं। 7 फरवरी, 2017 को दिल्ली आश्रम ने अपनी प्रिय करुणा दीदी को भावभीनी विदाई दी। आश्रम के ध्यान कक्ष में उनके पाश्चात्य व राज्य दोनों स्थानों के शिष्य उपस्थित थे। दीदी के गुरुभाई जॉर्ज ब्रुक्स ने व अन्य शिष्य, श्रीला, जयन्ती व प्रेमशीला ने करुणामयी दीदी से सीखा हुआ संगीत प्रस्तुत किया। इसके बाद उनके सान्निध्य में रहने वाले व उनका मार्गदर्शन पाने वाले अनेक प्रेमियों ने अपने अपने अनुभवों की लड़ियां अन्तयन्त हार्दिक शब्दों में पिरो कर हमारे सामने करुणामयी दीदी के जीवन की जो झांकी प्रस्तुत की, उसके कुछ अंश आपके सम्मुख रख रही हूं। करुणा दीदी का जीवन हमारे लिये सदा ही आदर्श रहा है और उनके जाने के बाद भी वह हमारे लिये एक आदर्श रहेगीं। ईश्वर से प्रार्थना है कि हम भी इन उदगारों से प्रेरणा लें और अपने जीवन में उन्हें उतारने का प्रयत्न करते रहें।

रंगम्मा दीदी: करुणा दीदी के बारे में बोलते हुए रंगम्मा दी का गला भर आया। उन्होंने कहा कि करुणा दीदी ने मुझे उंगली पकड़ कर आश्रम में चलना

सिखाया। साथ ही उन्होंने करुणा दीदी की डायरी से कुछ अंश पढ़े जो उन्होंने 26 जनवरी को ही प्रातः अपनी डायरी में लिखे थे।

भारत माता की जय। स्वच्छ भारत, स्वस्थ भारत, स्वप्न भारत, स्वर्ण भारत, स्वतः भारत। भारत माता, तेरी जय हो, विजय हो। ओम नमो भगवते, सत्यमेव जयते, सत्यमेव विजयते। श्री मां आशीर्वाद, मात्र कला मंदिर में सभी को श्री मां का शाश्वत आशीर्वाद। (करुणा दीदी की डायरी के बाकी अंश हम अलग लेख में दे रहे हैं।)

रजनीश जी: मैं परमपिता से प्रार्थना करता हूं कि उन्हें आवागमन से मुक्त करें। मेरा उनसे पहला परिचय लगभग 60 वर्ष पहले 1957-58 में हुआ था। हमारे घर के पास से किसी के बहुत सुन्दर गाने की आवाज आती थी। पता चला, उनकी छोटी बहन गाने का रियाज करती थी। उनको पहली बार देखने पर ही उनके चरित्र की दृढ़ता दिखायी दी। इतनी छोटी उम्र में ही वे संगीत में एम ए थीं और ऑल इंडिया रेडियो में उच्चतम कोटि की ग्रेड कलाकार थीं। करुणा जी की गायकी के बहुत प्रशंसक थे। गुरु हरिदास जी के कवि सम्मेलन आदि सभी जगह पर उन्हें बुलाया जाता था। वे सब तरह के गाने गाती थीं भजन, गीत व

उच्च शास्त्रीय। गज़ल गायकी में उनकी पकड़ बहुत मजबूत थी। मशहूर पत्रकार खुशवन्त जी ने तब हिन्दुस्तान टाइम्स में मिडिल पेज पर उन पर एक बहुत बड़ा लेख लिखा था, और जहाँ तक मुझे याद है उन्होंने उन्हें भारत की गज़ल क्वीन का टाइटल दिया था। फिर इतनी प्रसिद्धि के बाद कुछ ऐसा उनके मन में हुआ कि श्री अरविन्द और श्री मां के चरणों में स्वेच्छा से अपना जीवन और अपना संगीत दोनों समर्पण कर दिया। यहीं आकर वे रहने लगीं और भक्ति संगीत पर ही एकाग्र हो गयीं। श्री मां और श्री अरविन्द की कृपा से उन्हें भक्ति संगीत में भी विश्व ख्याति मिली। हिन्दू धर्म में ही नहीं, सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोग उन्हें अपने यहाँ भजन गाने के लिये बुलाते थे। 2 दिन पहले ही 5 फरवरी को निजामुद्दीन दरगाह पर वे भक्ति संगीत के लिये आमंत्रित थीं। गुरु गोविन्द जी के 400 जन्मदिन पर कनाडा के गुरुद्वारों में उन्हें आमन्त्रित किया गया था।

वे अपना जीवन भरपूर तरीके से जी कर गयीं। उन्होंने अपनी विद्या सब में बहुत उदारता से बांटी। संगीत उनका सबसे बड़ा प्रेम था। जिस शालीनता, सादगी, गरिमा से आज हम सब यहाँ श्री मां की उपस्थिति में उनको भावभीनी विदाई देने के लिये एकत्रित हुए हैं उसके लिये मैं तारा जी, प्रांजल भैया व रंगम्मा दी का और सब आश्रमवासियों का हृदय से धन्यवाद करता हूँ।

सर्वे सुखिना भवन्तु, सर्वे सन्तुः
निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा
कश्चिद दुःख भागभवेन।

सुरेन्द्रशर्मा दीदी:

वे मदर्स इन्टरनेशनल स्कूल 1968 में आयीं थीं स्कूल के बच्चे उनको जानते थे क्योंकि वे दयाशंकर मिश्र जी के साथ एक पत्रिका निकाला करतीं थीं 'राजाभैया' और उनको अन्ना दीदी कहा जाता था। मैं उनको राजा भैया के माध्यम से पत्र लिखती थी। वे बच्चों के साथ बच्ची जैसी हो जाती थीं। उनमें एक बचपना, एक भोलापन था और दूसरी तरफ इतना गहन गंभीर ज्ञान कि ऐसा कुछ नहीं था जो वे नहीं जानतीं थीं यहाँ तक कि दर्शनशास्त्र का गंभीर ज्ञान। उस समय जब वे आयीं तो ऐसे जैसे एक नदी बहुत उंचे शिखर से निकल कर आयी है तोड़ फोड़ करती हुयी, अपना रास्ता बनाती हुयी। जब नव निर्माण करना पड़ता है, बहुत कुछ उखाड़ना पछाड़ना भी पड़ता है। उनका तेज उनकी गति उनकी मति सब कुछ बेमिसाल था। इस तरह के अनुशासन का स्वयं पालन करना और पालन करवाना। किसी भी कीमत पर समझौता नहीं करना और अपना रास्ता तय करना। उनको तब भी पता था कि वेग कहां जाकर थमेगा। उन्होंने लगभग 50 वर्ष इस आश्रम में बिताये और छोटे से छोटा काम भी किया। उस समय आश्रम में मदर्स इन्टरनेशनल स्कूल के बच्चे छात्रावास में रहा करते थे। उनकी देखभाल और यहाँ तक कि उन्होंने

बर्तन तक मांजे। एक तरफ उनका संगीत और उनका इतना नाम और दूसरी तरफ छोटे से छोटा काम भी उन्होंने तत्परता से किया। जैसे जीवन बिल्कुल झोंक दिया। उनका समर्पण बेमिसाल और अपराजेय था। उनकी जिजीविषा को हम सब देखते थे। उस दिन भी कहते हैं जैसे कोई देवता शरीर छोड़ कर चला जाते हैं, उनको कोई दुख तकलीफ नहीं थी। उन्होंने अपना जीवन भरपूर जिया। एल्युमिनि एसोसिएशन के दिन हमारे मदर्स स्कूल के बच्चे 26 जनवरी को मिला करते हैं और उन्होंने उनको बुलाया कि आप आइये पर पता नहीं किस दैवयोग से उस दिन वे नहीं आ पायीं। पिछले वर्ष हंसती खेलती उनके साथ गाती रहीं। जैसे सरस्वती का साक्षात् वरदान आश्रम में उनके माध्यम से आ गया था। उन्होंने ऐसी सुरसंगति बिठायी कि कुछ भी बेसुरापन आश्रम में ना रहे, वातावरण में, अन्तर्मन में और प्राण में हर जगह समस्वरता रहे ऐसा प्रयास उन्होंने किया। जब मातृ कला मंदिर में उन्होंने आशीर्वाद दिया तो वह समस्वरता का ही संदेश था। समस्वरता उनका लक्ष्य था। आश्रम के प्रति उनका पूर्ण समर्पण था। श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर साहब की छाया की तरह से वे उनके जीवन काल में बनी रहीं। देश के लिये और पूरे विश्व के लिये वे तब भी समर्पित थीं और उस समय चाहे अमेरिका के राष्ट्रपति को पत्र लिखना हो, हर विषय पर चाचाजी मुखर रूप से उनसे अपने विचार अभिव्यक्त करते थे। करुणा

जी का हिंदी पर, अंग्रेजी पर और विभिन्न भाषाओं पर अधिकार था। उनमें आलस्य नाम की चीज तो थी ही नहीं। किसी भी समय किसी भी काम के लिये वे मुस्कान के साथ तैयार हो जातीं थीं लेकिन अपने सिद्धान्तों के साथ उन्होंने कभी समझौता नहीं किया और यही उन्होंने अपने शिष्यों को भी सिखाया। उनके व्यक्तित्व में एक तरफ सरलता और दूसरी तरफ जो दृढ़ता थी वो सीखने योग्य थी। वे विश्व व्यापी नाद ब्रह्म की साधिका थीं। अपने गुरु जी के आदेश पर वे अमेरिका चली गयीं और पहली बार जब गयीं, तो हमने उनको कहा- 'यह पहनना चाहिये, यह ओढ़ना चाहिये' और आपको कुछ गहने भी पहनने चाहियें- एक श्री मां का प्रतीक या कुछ और ले लीजिये। उन्होंने कहा- 'अगर आवश्यकता होती तो चाचाजी मुझे कहते कि पहनना चाहिये', हंस कर कह देतीं, मैं इन चीजों को कहाँ संभालूंगी। उनके पास उनका बहुमूल्य रत्न उनका संगीत था और इसके अलावा और किसी चीज की उनको आवश्यकता महसूस नहीं हुयी। व्यक्तिगत रूप से हमारे आश्रम के लिये वो एक पर्यायवाची बन गयीं थीं, आश्रम आयेँ और करुणा दी से ना मिलें, ऐसा हम नहीं सोच पाते थे। श्री कृष्ण कहते हैं-

ना जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो-न हन्यते हन्यमाने शरीरे। लेकिन इसके

बाद भी हम तड़पते हैं कि फिर से उनके दर्शन कर सकें। वो यहां रहीं और उनका संगीत, उनका आशीर्वाद हमेशा हमारे साथ है। हम प्रार्थना करते हैं कि जो उनका उचित लोक है, जिसकी वो इच्छा करती थीं वो उनको प्राप्त हो। क्यों कि संगीत अमर है, स्वर अमर है, वो अमृतत्व को प्राप्त हुयीं। मेरे लिये उनका जाना एक व्यक्तिगत क्षति है। दुख सुख में, हर घड़ी में वे मेरे परिवार के साथ खड़ी रहीं। उसके लिये तो धन्यवाद करने के शब्द भी मेरे पास नहीं हैं। नव वर्ष के संकल्प के बारे में मैंने उनसे पूछा तो उन्होंने कहा: 'अभी थोड़ी थोड़ी बात सोचती रहती हूं।' जब वे आयीं थीं तो बच्चों के साथ हम छोटे छोटे नाटक, बैले आदि किया करते थे। उन्होंने कहा कि मैं चाहती हूं कि एक नाटक अकादमी बन जाये और हम छोटे छोटे नाटक किया करें। उन्होंने कुछ नाटक बताये कि ये ये नाटक फिर खोज कर लाओ। दूसरे कहा कि मेरा संकल्प है कि मैं तैरना सीखना चाहती हूं। बड़ी जल्दी मैं तैरना सीखने वाली हूं। उन्होंने बताया कि एक बार श्री अरविन्द के जन्मदिन पर वो भाषण दे रहीं थीं और बच्चों को बता रहीं थीं कि किस तरह से आप जब एक काम हाथ में ले लेते हैं उसमें फिर आपको डूबना पड़ता है। जौहर साहब पास बैठे थे। उन्होंने कहा: करुणा जब भी बात करती है डूबने की करती है, तैरने की नहीं करती। उन्होंने कहा 'अब मैं तैरना सीखना चाहती हूं।'

उनका यह नववर्ष का संकल्प था और वे वास्तव में सचमुच में ही हम सबको पीछे छोड़ कर पार तैर गयीं।

मेरा उनको प्रणाम है। उन्होंने जो कुछ भी हमारे लिये, सारे संगीत जगत के लिये किया उसका बहुत बहुत धन्यवाद। भारत रत्न रविशंकर जी, अली अकबर खान जी ये उनके मित्र थे। हम भाग्यशाली थे कि उनके माध्यम से हम इतने महान संगीतज्ञों से मिले और उनके दिव्य संगीत का आनन्द प्राप्त किया। निश्चय ही उनके उपर श्री माँ के आशीर्वाद थे। मेरी कामना है कि वे आशीर्वाद, उनकी उपस्थिति सदा हमारे बीच रहे!

पंडित विजयशंकर मिश्रा जी:

मातृ कला मंदिर का वार्षिक समारोह था। स्टेज रिहर्सल के समय तबले के साथ हारमोनियम बजाने वाला व्यक्ति नहीं आया। जो संगीत जानते हैं, वे जानते हैं कि एक गायिका के लिये तबले के साथ हारमोनियम की धुन बैठाना कितना मुश्किल होता है। मैं ने उस दिन स्टेज रिहर्सल टालने का फैसला किया। करुणा दीदी के कारण पूछने पर और यथास्थिति बताने पर उन्होंने कहा: 'सबकी रिहर्सल हो रही है तो तुम्हारी भी आज हो ही जाये तो अच्छा है' जब उन्होंने पूछा कौन सी ताल तो मैं और डर गया मैंने कहा- 'रुद्रताल'। करुणा दीदी ने कहा, 'अच्छा, ग्यारह मात्रा'। और एक सेंकड नहीं लगा उन्हें रुद्रताल का आलाप पकड़ने में। 25

मिनट का वो मंच कार्यक्रम, और जहां बड़े बड़े बजाने वाले हिल जाते हैं, 25 मिनट तक दीदी अनवरत रुद्रताल हारमोनियम बजाती रहीं। ये उनकी अलग तरह की विशेषता थी

जिसे कम लोग जानते हैं। मेरे छोटे भाई उदयशंकर ने यहां कुछ दिन काम किया है। एक बार वे मेरे पास आये, पूछने



लगे, 'करुणा दी कैसा गाती हैं?' मैंने कहा, 'कलाकार बन कर मत जाना, शिष्य बन कर जाना उनके सामने-वे तबलियों को तबला सिखाने की हैसियत रखती हैं' और मेरे भाई ने आकर कहा कि सचमुच वे संगीत की प्रकाण्ड विद्वान हैं। मैं सचमुच कहता हूं, मन्दिर में बैठा हूं कि करुणा दीदी के जाने से मैंने अपना एकमात्र अभिभावक खो दिया है। वे ऐसी शख्शियत थीं जिनके आगे मैं सदा झुका रहता था। मैं नहीं चाहता कि करुणा दीदी को आवागमन से मुक्ति मिले। उनके जैसे लोगों की धरती पर बहुत जरूरत है। मैं चाहता हूं कि वे फिर आयें और हमें लय

सुर की नयी जानकारी देती रहें। मैं उनकी यादों को प्रणाम करता हूं।

यशिबाला टंडन: वे मेरी सबसे प्यारी बहन थीं। उनके अंदर मातृत्व की, लोगों को प्रेम कर सकने की विशेष क्षमता थी जो सम्भवतः उन्होंने हमारी मां से पूरी तरह से ग्रहण की थी। मेरा करुणा दीदी के साथ एक बहुत व्यक्तिगत संबंध था। मुझे याद है कि हम कई कई रातें आध्यात्मिक विषयों पर बातें करते बिता देते थे। उनके अंदर उनके उद्देश्य के प्रति लगन, निष्ठा, भक्ति कूट कूट कर भरी हुयी थी। वे आश्रम में किसी दबाव में नहीं वरन अपनी स्वेच्छा से आयीं थीं। मेरे विचार में वो अपने आत्म उत्थान के लिये बहुत उत्सुक थीं और यहां इसी लक्ष्य को लेकर आये लोगों के मध्य उन्हें वो अवसर पर्याप्त रूप में उपलब्ध था। साथ ही उन्होंने इस संस्था के कार्य में भी प्रशंसनीय योगदान दिया जिसकी मैं हृदय से प्रशंसा करती हूं। वे एक गरिमा के साथ जीं और शान्ति से इस संसार से गयीं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूं कि उन्हें अपनी गोद में शान्ति दें। यदि मुझसे पूछा जाये कि मैं अपने अगले जन्म में किन 5 लोगों से पुनः मिलना चाहूंगी, तो अपनी स्मृति मंजूषा में अनेक लोगों के मध्य निःसंकोच करुणा दीदी को चाहूंगी। मेरी प्रार्थना है कि उनकी आत्मा शान्ति में निवास करे।

अन्त में तारा दीदी ने सावित्री से निम्न कुछ पंक्तियां विशिष्ट करुणा दीदी के लिये पढ़ीं।

सर्ग 1

शाश्वत दिवसः

हर्षोन्मत्त महाकाशों से नीचे
 अंतरात्मा का चुनाव और परम संसिद्धि
 अद्भुत एक सूर्य ने था अवलोका,
 - मृत्युहीन आनन्द के सुलोकों पर,
 वहां पूर्णता के सुन्दर सुधाम पर,
 शाश्वत की गुह्य रभस हृदय- धड़कनों
 को अभिविवस और अभिव्यक्त बनाती
 'उसकी' स्मिति के जादुई उदयों पर।
 ईश्वर के शाश्वत दिवस ने उदित हो
 सावित्री को चहुँदिशि से घेर लिया,
 सतत प्रकाश-प्रदेशों ने आकर अब
 सकल 'प्रकृति' के ऊपर एक 'निरतिशय'
 आनन्द का आक्रमण बोल था दिया।
 और शाश्वती के स्पर्श से पुलक कर
 उसकी सारी काया सिहर उठी थी,
 औ उसकी आत्मा सीधे अनन्त के
 स्रोतों के समीप आ खड़ी हुई थी।
 अनन्तता के सांत सुसीमांतों के
 भीतर सावित्री निवास करती थी,
 सतत नवीन चिरन्तन अवलोकन में।
 यह तो अपनी विराट् आत्मदृष्टि को
 'शाश्वतता' ने ही बहु गुणित किया था,
 निज अंतहीन सामर्थ्य औ हर्ष को
 करके रूपांतरित एक आनंद में
 जिससे कि 'काल' के संग खेल रही
 ये आत्माएं, इन महती महिमाओं में,
 जो अज्ञात गहनताओं से आकर,
 एक चिरन्तन नवल जन्म लेती हैं,
 औ इन विशाल, महती सुशक्तियों में,

जो अज्ञात की ऊँचाई से अपनी
 अमरता भरी छलांग लगा रही हैं,
 औ उस आवेगी अंतर-धड़कन में,
 जो इक अमर प्रेम से स्फूर्त बनी है,
 और मधुरता के इन चिर दृश्यों में,
 जो ना कभी भी धूमिल हो सकते हैं,
 इनमें अपना पूरा भाग ले सकें।
 हर्षोन्मत्त उर और नेत्र हित अमरा,
 नील अतलता इक नीचे फिसल पड़ी,
 'विस्मय' 'स्वप्न प्रसार निरभ्र नभों से,
 परदर्श शान्ति के शुभ्र तोरणों में;
 भेंटा चिर प्रकाश यह उन नेत्रों से
 जिन्होंने निरंकुश उस पूर्ण किरण को
 बिना किसी कष्ट सहा और संभाला,
 और सभी रूपों औ आकारों की
 अमर स्पष्टताओं का दर्शन पाया।
 उस वातावरण से स्वप्न-द्वाभा औ
 धूसरता निर्वासित बनी हुई थी,
 ऐसे देदीप्यमान गगनों में तो
 'रात्रि' असम्भव बन सतत रह गयी थी।
 औ सर्जक आनंद की सौम्य शांत इक
 सुन्दरता से भव्यतया जन्माकर
 आध्यात्मिक विस्तार पड़े दिखलायी,
 जो असीमता-अंतर में सुस्थित थे;
 दिव्य शान्ति की उदासीनता की ही
 प्रसन्नता हित साकारी विचार निज
 प्यारे-प्यारे आयामों को धारे,
 एक अनन्त बोध की गंभीर मांग को
 मानों अपना उत्तर अर्प रहे थे,
 उसकी अतनु पुलक के धारण करने
 में रूपायण के दिव्य प्रयोजन को,
 पूरा करने हित साकार बने थे।

विश्व-शक्ति की यह 'काल' में कूच थी,
 अंतरात्मा की विशालताओं के
 सुसामंजस्यमय प्रत्येक स्तरों ने
 काल-चक्र आवर्तन क्रम के भीतर,
 छन्दित लोक-भूमिकाओं के भीतर,
 विश्वानंद की चिर-मस्ती को धारा
 वस्त्वात्मा के अनंत रूपायण में,
 जो उस कलाकार से रची गयी थी
 जिसने इन जगत्‌ओं को सपनाया है;
 इस जग के सारे ही सुसौंदर्य औ.
 इस जग के सारे ही चमत्कार की,
 और 'काल' की सब जटिल विविधता की
 शाश्वतता ही इक स्रोत औ तत्व थी;
 वे सब पदार्थ 'जड़ता' की नमनीया
 कुहेलिका-भर से ही बने नहीं थे,
 वे सब तो अपनी गंभीरताओं
 के आर्धाभास को सुप्रकट कर रहे,
 अपनी सुशक्तियों के महान् अनुक्रम
 को वे अपने थे उन्मुक्त कर रहे।

त्रिविध स्वरूपी गूढ़ गगन के नीचे
 सप्त अमर पृथ्वियां प्रकट होकर इक
 भव्य वेश में दिखलायी पड़ती थीं :
 जो कि भाग्यवानों के अपने गृह थीं,
 जो मृत्यु और निद्रा से विमुक्त थे,
 बस लुप्तात्मा औ. खोजी लोकों से
 कोई शोक और दुख जहां पहुँचकर,
 औ. कोई पीड़ा अपना हमला कर,
 'स्वर्ग' 'प्रकृति की अपनी इस अविकारी
 निश्चलता को नहीं बदल सकते थे-
 और ना चिर शान्ति की महा मुद्रा को;
 उसकी आनंद भंगि अविकृत ही थी।
 वहां भूमिकायें यों फैली थीं ज्यों
 'प्रभु' की विशाल निद्रा के बिस्तर थे,
 और अमरता की नील सिंधुता में
 डूबे हुए विचार-सुपंख स्वर्ग की
 विशाल विश्रांति में चढ़े जाते थे।
 रूपान्तरित एक पार्थिव स्वभाव ने
 परम शान्ति की एक श्वास अनुभव की।



श्रीअरविन्द - काव्य चयन

-(माण्डव्य के अनुध्यान से)

किसने प्रकृति बनायी इतनी अत्याचारिणी!
 किसने दण्ड दिया हमको गुलाम बनने को - नहीं ईश ने।
 हमने ही तो स्वयं चुना दासत्व स्वयं
 निज अंगो पे लादी हैं बोझल जंजीरें।
 देव लखें बचपना हमारा मधु कौतुक भर।
 अतः अगर वो इस असहाय अवस्था में हमको बंधित कर
 फिर यदि बावजूद चीत्कारों के हमसे वे कौतुक करते,
 अपने भीषण अट्हास से प्रत्युत्तर दे क्रोध हमारा
 दोष हमारा ही जिसने है पाश चुना यह प्रथम बार ही।
 भूल हमारी जो भयभीत देव लीला से।
 सर्वप्रथम वे करें घोषणा हम सब केवल नास्ति नास्ति हैं।
 और कहें हम सब अब कभी मुक्त क्या होंगे,
 क्योंकि प्रकृति ने रखा बाँधकर, धर्म प्रकृति का दहन मात्र है,
 नीर डुबाए, मृत्यु करे निश्चित शिकार ही
 शोक और पीड़ा के क्यों हम दास बन गये
 और पाप है सिंह-सदृश जग के शिकार पर,
 क्योंकि प्रकृति है यही, अनन्त नहीं है मानव
 इसका परम प्रमाण हमें मिलता है प्रतिदिन
 वे चिल्लाते, और ईश तो वही विराट् यंत्र है केवल
 फिर भी हम पर सदा विचार-बिजलियां खेलें
 और सदा क्रीड़ित है हममें प्रेम महत् गौरवमय उनका
 प्रभु हंसते हैं और अधिक अब जब लीला का
 महनटन प्रारम्भ हुआ था इस लीला में।



अभियान के लिये आमंत्रण

-श्रीमाँ

हम एक ऐसी विशेष स्थिति में हैं जैसी पहले कभी नहीं आई। हम उस बेला में उपस्थित हैं जब नया जगत् जन्म ले रहा है, पर जो अभी बहुत छोटा है और दुर्बल है- जो अभी पहचाना नहीं गया, अनुभव नहीं किया गया पर यह मौजूद है और बढ़ाने का प्रयास कर रहा है तथा अपने परिणाम के बारे में सुनिश्चित है। लेकिन इस तक पहुँचने वाला पथ बिल्कुल नया पथ है जिस पर अब तक कोई नहीं चला। यह आरम्भ है, एक विश्वव्यापी आरम्भ, एक बिल्कुल अप्रत्याशित और अकल्पित अभियान।

कुछ लोगों को अभियान प्रिय होते हैं... उन्हें मैं इस अभियान के लिये आमंत्रित करती हूँ।

यह आध्यात्मिक रूप से उन्हीं कार्यों को, जिन्हें दूसरे हमसे पहले कर चुके हैं, दुबारा करने का प्रश्न नहीं है, क्योंकि हमारा अभियान उससे आगे से शुरू होता है। यह नयी सृष्टि का, बिल्कुल नयी सृष्टि का प्रश्न है जिसमें सब अनपेक्षित चीजें, संकट, खतरे एवं संयोग मौजूद हैं- यह सच्चे रूप में एक अभियान है इसका लक्ष्य है सुनिश्चित विजय, पर वहीं जाने का मार्ग अज्ञात है, इसे बीहड़ प्रदेश में से पग-पग पर खोजना होगा। यह एक ऐसी बात है जो इस वर्तमान जगत् में इससे पहले कभी नहीं हुई और इसी रूप में फिर कभी होगी भी नहीं।

उन सबको एक तरफ रख दो जो पहले देखा जा चुका है, सोचा जा चुका है, बनाया जा चुका है और तब...अज्ञात में चलना शुरू करो।

तुम इस समय यहाँ, इस धरती पर इसलिये हो, क्योंकि एक समय तुमने यह चुनाव किया था- अब तुम्हें याद नहीं है, पर मैं जानती हूँ- इसी कारण तुम यहाँ हो। हाँ, तो तुम्हें इस कार्य की ऊँचाई तक उठना चाहिये। तुम्हें प्रयास करना चाहिये, तुम्हें सभी कमजोरियों और सीमाओं को जीतना चाहिये और सबसे बढ़कर अपने अहंकार से कहना चाहिये "तुम्हारा समय बीत गया।"

हम एक ऐसी जाति चाहते हैं जिसमें अहंकार ना हो, जिसमें अहंकार के स्थान पर भागवत् चेतना हो वह भागवत् चेतना जो जाति को विकसित होने और अतिमानस सत्ता को जन्म लेने देगी।

हम पृथ्वी के इतिहास के एक निर्णायक मोड़ के समय में हैं। यदि अतिमानव के आने के लिये तैयारी कर रही है और इसके कारण जीवन का पुराना तरीका मूल्य खो रहा है। व्यक्ति को निडरता से अपने-आपको भविष्य की ओर फेंक देना चाहिये। चाहे इसकी नयी माँगें क्यों ना हों। जो तुच्छतायें एक समय में बरदाश्त की जाती थी, अब नहीं की जातीं। व्यक्ति को अपने-आपको विस्तृत करना चाहिये

ताकि जो जन्म लेने वाला है उसे पा सके।

विश्व इतिहास का अभी एक असाधारण परिवर्तन काल आया हुआ है और इसके एक विशेष क्षण में खड़े हैं। शायद इससे पहले कभी भी आज की जितनी घृणा, रक्त प्रवाह और अराजकता की काली रात्रि के बीच से मानव जाति को गुजरना नहीं पड़ा था और साथ-ही-साथ यह बात भी है कि इतनी बलवती, इतनी तीव्र आशा भी उसमें पहले कभी नहीं जगी थी।

सच तो यह है कि हम यदि अपने अंतर की ध्वनि सुनें तो हम तुरंत ही यह देख लेंगे की हम न्यूनाधिक सचेतन भाव से प्रतीक्षा कर रहे हैं एक नवयुग के अभ्युदय की जिसमें न्याय, सौंदर्य, सुसामंजस्य, सौहार्द एवं बन्धुत्व का राज्य होगा। और यह बात जगत की आज की वास्तविक हालत से बिलकुल ही बेमेल, विपरीत लगती है। किन्तु हम सब यह जानते हैं कि उषा का संकेत नहीं हो सकता? और यदि पहले कभी-भी आज जैसी सर्वग्रासी और भीषण रात्रि नहीं आयी तो फिर कोई उषा उतनी भास्वती, उतनी विशुद्ध, उतनी ज्योतिर्मयी नहीं हुई होगी जितनी कि आगे आने वाली उषा होगी।... निशा के दुःस्वप्नों के उपरान्त जगत जागेगा और एक नवचेतना में अधिष्ठित होगा।

प्रकृति के अन्दर एक ऊर्ध्वमुखी क्रम-विकास चल रहा है। यह पत्थर से पेड़-पौधे तक, पेड़-पौधे से पशु तक, पशु से मनुष्य तक जाता है। इस समय, चूँकि

मनुष्य ही इस ऊर्ध्वमुखी क्रम-विकास के शिखर के अन्तिम स्तर पर वर्तमान है इसलिये, वह समझता है कि वही इस आरोहण की अन्तिम अवस्था है और वह विश्वास करता है कि इस पृथ्वी पर उससे बड़ी कोई दूसरी चीज नहीं हो सकती। पर यह उसकी भूल है। अपनी भौतिक प्रकृति में वह अभी तक करीब-करीब पूर्ण रूप से पशु है; वह एक विचार करने वाला और बात करने वाला प्राणी तो है, पर फिर भी अपनी भौतिक आदतों और सहज-प्रवृत्तियों में एक पशु भी है। निःसन्देह, प्रकृति एक ऐसे प्राणी को उत्पन्न करने का प्रयास कर रही है जो मनुष्य के लिये वैसा ही होगा जैसा कि मनुष्य पशु के लिये है, जिसकी चेतना और अज्ञान के प्रति उसकी दासता से बहुत अधिक ऊपर उठ जायेगी।

श्रीअरविन्द मनुष्यों को इसी सत्य की शिक्षा देने के लिये पृथ्वी पर आये थे। उन्होंने उन्हें बताया कि मनुष्य केवल एक मध्यवर्ती सत्ता है जो मनोमयी चेतना में निवास करती है, परन्तु उसके लिये एक नयी चेतना, सत्यचेतना प्राप्त करना संभव है और इसमें एक पूर्ण सुसमंजस, शुभ और सुन्दर आनन्दपूर्ण और सम्पूर्ण-सचेतन जीवन यापन करने की क्षमता है। इस पृथ्वी पर अपने पूरे जीवन-काल में श्रीअरविन्द ने अपना सारा समय इसी चेतना को जिसे वह **अतिमानसिक चेतना** कहा करते थे अपने अन्दर स्थापित करने में तथा अपने इर्द-गिर्द इकट्ठे हुए लोगों

को इसे प्राप्त करने में सहायता करने में ही बिताया।

इस जगती के इतिहास में श्रीअरविन्द जिस चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं, वह कोई उपदेश नहीं है, ना ही वह कोई चमत्कार है, अपितु वह सीधे भगवान द्वारा संचालित निर्णायक कार्य है।

श्रीअरविन्द धरती पर पुराने मतों अथवा पुरानी शिक्षाओं के साथ प्रतियोगिता करने के लिये कोई शिक्षा या मत लाने के लिये नहीं आये हैं। वे अतीत को पार करने का तरीका दिखाने और सन्निकट और अनिवार्य भविष्य के लिये मूर्त रूप में मार्ग बनाने आये हैं- श्रीअरविन्द अतीत के नहीं हैं और ना इतिहास के ही हैं। श्रीअरविन्द चरितार्थ होने के लिये आगे बढ़ता हुआ भविष्य हैं।

श्रीअरविन्द धरती पर अतिमानस जगत की अभिव्यक्ति की घोषणा करने के लिये आये थे और उन्होंने इस अभिव्यक्ति की घोषणा ही नहीं की बल्कि अंशतः अतिमानसिक शक्ति को मूर्त रूप भी दिया और उन्होंने यह दिखलाया कि उसे अभिव्यक्त करने के लिये हमें क्या करना चाहिये। हम सर्वोत्तम चीज यही कर सकते हैं कि उन्होंने जो कुछ बतलाया है उसका अध्ययन करें और उनके उदाहरण का अनुसरण करने की कोशिश करें और अपने आपको नई अभिव्यक्ति के लिये तैयार करें।

श्रीअरविन्द हमें यह बतलाने आये थे कि सत्य की खोज के लिये किसी को पृथ्वी

छोड़ने की आवश्यकता नहीं, भगवान से संबंध स्थापित करने के लिये किसी को संसार छोड़ने की आवश्यकता नहीं, ना ही उसे सीमित मान्यताओं के अन्दर रहने की आवश्यकता है। भगवान् सर्वत्र हैं, प्रत्येक वस्तु में हैं और यदि वे छिपे हैं तो इसलिए कि हम उन्हें ढूँढ निकालने का कष्ट नहीं उठाते।

श्रीअरविन्द भविष्य के हैं, वे भविष्य के सन्देशवाहक हैं। वे अब भी हमें भागवत संकल्प द्वारा निर्मित उज्ज्वल भविष्य को जल्दी चरितार्थ करने के लिये राह का अनुसरण करना चाहिये वह दिखलाते हैं

श्रीअरविन्द सतत रूप से हमारे साथ हैं और उन लोगों के सामने अपने-आपको प्रकट करते हैं जो उन्हें देखने और सुनने के लिये प्रस्तुत हैं।

श्रीअरविन्द अतीत के नहीं हैं और ना इतिहास के ही हैं। श्रीअरविन्द चरितार्थ होने के लिये आगे बढ़ता हुआ दिव्य भविष्य हैं।

आज जिस सभ्यता का अन्त इतने नाटकीय ढंग से हो रहा है आश्रित थी मन की शक्ति पर, जो मन .जड़ और प्राण पर क्रिया कर रहा था, जगत पर इसका क्या प्रभाव पड़ा इसकी आलोचना हमें यहाँ नहीं करनी है। किन्तु, एक नवीन राज्य, मानव-विधान के उपरान्त भागवत् विधान।

तो भी ऐसा कहा जाय कि आज जैसे संभावना पूर्ण और अनन्य साधारण बृहत्

क्षण में पृथ्वी पर रहने का जिन लोगों को सौभाग्य है, क्या उन लोगों के लिये यह शोभनीय है कि उनका हृदय तुच्छ व्यक्तिगत स्वार्थों और स्थानीय संबंधों से अधिक और कुछ ग्रहण नहीं करे।

संक्षेप में वे सारे लोग जिन्हें यह बोध हो गया है कि उन पर अपना या उनके परिवार का या स्वदेश का अधिकार नहीं है, वरन् वे हैं भगवान के जो भगवान मानव जाति के द्वारा सर्व देशों में अभिव्यक्त होते हैं, वे लोग सचमुच में यह जानते हैं कि उन्हें जानना है और कार्यव्रती होना है मानव जाति के लिये नहीं, नव उषा के अविर्भाव के लिये।

समस्त जगत मिथ्यात्व में डूबा है, इसलिये जितने भी क्रिया-कलाप उठेंगे वे सब झूठे होंगे और यह स्थिति लम्बे समय तक चल सकती है और यह लोगों को और देश को बहुत कष्ट पहुँचायेगी। करने लायक बस, एक ही है, हृदय से भागवत् 'हस्तक्षेप' के लिये प्रार्थना करो, क्योंकि एक वही चीज है जो हमारी रक्षा कर सकती है। और जो भी इसके प्रति सचेतन हो सकते हैं उन सबको यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि वे सत्य का ही पक्ष लेंगे और केवल 'सत्य' में ही काम करेंगे। इसमें कोई समझौता नहीं होना चाहिये, यह एकदम अनिवार्य है। यही एकमात्र तरीका है।

चाहे ऐसा प्रतीत हो कि चीजें हमारे लिये बिगड़ती जा रही है, और यह वर्तमान प्रबल मिथ्यात्व के कारण अवश्य

होगा, फिर भी हमें 'सत्य' पर डटे रहने के निर्णय से डिगना ना चाहिये।

यह जगत बहुत खराब है, बहुत अन्धकारमय है, अत्यंत कुरूप है, अवचेतन है, दुख और पीड़ा से भरा हुआ है और इसीलिये यह परम सौन्दर्य, परम ज्योति, परम चेतना और परम आनन्दस्वरूप बन सकता है।

हम अब जो कर रहे हैं वह एक नई चीज है, इसका अतीत के साथ कोई संबंध नहीं।

हम इस समय फिर पृथ्वी के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ पर हैं। सर्वत्र तीव्र व्यथा, प्रतीक्षा और भय की स्थिति है। अब क्या होने वाला है? इसका उत्तर, बस, एक ही है - "यदि मानव आध्यात्मिक होने के लिये बस तैयार हो जाये।"

वह साहस और वह वीरता, जिसकी भगवान् हमसे अपेक्षा रखते हैं, उसका उपयोग हम अपनी कठिनाइयों, अपूर्णताओं और मलिनताओं के विरुद्ध लड़ने में क्यों ना करें ताकि फिर एक बार उस भयानक और आसुरिक विनाश में से गुजरने की आवश्यकता ही ना पड़े जो सारी सभ्यता को अन्धकार में डुबो देगा।

यही समस्या आज हमारे सामने है। हममें से प्रत्येक को इसे अपने ढंग से हल करना है।

सरकारों के बाद सरकारें आती हैं, शासन व्यवस्था के बाद शासन-व्यवस्था आती है। सदियों पर सदियाँ बीतती जाती हैं परन्तु मानव दुर्दशा शोचनीय

रूप में वह-की-वही बनी रहती है। जब तक मनुष्य जो है वह वही बना रहेगा, यानी अन्धा और अज्ञानी तथा समस्त आध्यात्मिक वास्तविकता की ओर से बन्द, तब तक वह दुर्दशा भी वैसी ही बनी रहेगी। रूपान्तर, मानव चेतना की प्रदीप्ति ही मानव जाति की अवस्था में सच्चा सुधार ला सकती है। अतः मनुष्य का पहला कर्तव्य है, दिव्य चेतना को खोजना और उसे प्राप्त करना।

संसार में एक ऐसा स्थान होना चाहिये जिसे कोई देश या राष्ट्र अपनी ही सम्पत्ति ना कह सके, ऐसा स्थान जहाँ सब लोग पूरी स्वतंत्रता से विश्व नागरिक नागरिक बनकर एकमात्र सत्ता ‘ परम सत्य ‘ की आज्ञा का पालन करते हुए रह सकेंगे। वह शांति एकता और सामंजस्य का स्थान होगा जहाँ मनुष्य की सारी युद्ध वृत्तियों का उपयोग दुख और दर्द को जीतने में, अपनी कमजोरियों और अज्ञान पर प्रभुत्व प्राप्त करने में होगा। ऐसा स्थान जहाँ मामूली इच्छाओं और आवेगों की तृप्ति तथा भौतिक सुख और आमोद-प्रमोद की अपेक्षा आत्मा की आवश्यकता और प्रगति को अधिक महत्व दिया जायेगा। इस स्थान पर बच्चे अपनी आत्मा के साथ सम्बन्ध खोये बिना समग्र रूप से बढ़ और विकसित हो सकेंगे। शिक्षा भी यहाँ परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने, प्रमाण-पत्र प्राप्त करने अथवा ऊँचे पद पाने के लिये नहीं दी जायेगी, वह विभिन्न क्षमताओं को बढ़ाने और नयी क्षमताओं को प्रकट करने

में सहायता दगी। इस स्थान पर सेवा करने और संगठित के अवसर उपाधियों और पदों का स्थान ले लेंगे। प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं को समान रूप से पूरा किया जायेगा। सामान्य अवस्था में मानसिक, नैतिक व आध्यात्मिक श्रेष्ठता जीवन के सुखों व शक्तियों को बढ़ाने में नहीं, बल्कि कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की वृद्धि में अभिव्यक्ति पायेगी। सभी लोगों को सभी प्रकार का कलात्मक सौन्दर्य, चित्रकला, शिल्प, संगीत, साहित्य आदि समान रूप से प्राप्त होगा। इस कलात्मक सौंदर्य का आनन्द प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक या आर्थिक परिस्थिति के बल पर नहीं, बल्कि अपनी आंतरिक क्षमताओं के अनुपात में ही प्राप्त कर सकेगा। क्योंकि इस आदर्श स्थान में धन सम्राट नहीं होगा। भौतिक संपत्ति तथा सामाजिक पद की अपेक्षा व्यक्तित्व का अधिक मूल्य होगा। यहाँ पर काम आजीविका के लिये नहीं, बल्कि अपने-आपको अभिव्यक्त करने और अपनी क्षमताओं तथा संभावनाओं को विकसित करने के लिये होगा, साथ ही काम पूरे समुदाय के लिये भी होगा। दूसरी ओर समुदाय हर एक के निर्वाह तथा कार्य क्षेत्र का प्रबंध करेगा। संक्षेप में, यह ऐसा स्थान होगा जहाँ मानव-संबंध जो प्रायः ऐकात्मिक रूप से प्रतियोगिता और संघर्ष पर आधारित होते हैं, वे अधिक अच्छा करने की स्पर्धा तथा सहयोग में और भ्रातृभाव में बदल जायेंगे।

भय से मुक्ति-विधियां

श्रीमांके वचन

जब डर लगे तो व्यक्ति को क्या करना चाहिये?

यह इसपर निर्भर है कि तुम कौन हो? डर दूर करने के कई तरीके हैं।

अगर तुम्हारा अपने चैत्य पुरुष से कुछ संबंध है, तो तुरंत उसे बुला लो और चैत्य प्रकाश में चीजों को वापिस, व्यवस्था में रख दो। यह सबसे सशक्त उपाय है।

जब यह चैत्य संपर्क ना हो, फिर भी सत्ता समझदार हो, यानि, उसका विवेकशील मन स्वतंत्र रूप से गति करता हो तो व्यक्ति उसका उपयोग तर्क के लिए कर सकता है, अपने-आपसे इस तरह बातचीत कर सकता है जैसे किसी बच्चे से कर रहा हो, उसे यह समझाये कि डर अपने-आपमें बुरी चीज़ है और अगर संकट है भी तो भय के साथ संकट का सामना करना सबसे बड़ी मूर्खता है। अगर सचमुच संकट है तो केवल साहस की शक्ति के द्वारा ही उसमें से बाहर निकलने का अवसर मिल सकता है; अगर तुम्हारे अंदर जरा भी भय है, तो बस तुम खतम समझो। तो इस प्रकार के तर्क से डरने वाले भाग को समझाओ कि वह डरना बंद कर दे।

अगर तुम्हारे अंदर श्रद्धा है और तुम भगवान् के प्रति निवेदित हो तो एक बहुत सरल-सा उपाय है। वह यह है, यूं कहो: "तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। मुझे कोई चीज

नहीं डरा सकती क्योंकि तुम ही मेरे जीवन को रास्ता दिखा रहे हो। मैं तुम्हारा हूं और तुम ही मेरे जीवन का मार्ग-दर्शन कर रहे हो।" यह बात तुरंत क्रिया करती है। सभी उपायों में यह उपाय सबसे बढ़कर प्रभावशाली है। यानि, व्यक्ति को सचमुच भगवान् के प्रति निवेदित होना चाहिये। यह हो तो तुरंत क्रिया होती है। सारा भय सपने की तरह तुरंत गायब हो जाता है और सपने के साथ-ही-साथ बुरा प्रभाव डालने वाली सत्ता भी सपने की तरह गायब हो जाती है। तुम्हें उसे पूरी तेजी के साथ दौड़ते हुए देखना चाहिये, पट, पट, पट! तो यह रहा उपाय।

अब, ऐसे लोग होते हैं जिनमें जबर्दस्त प्राण-शक्ति होती है। वे ऐसे योद्धा होते हैं जो एकदम सिर उठाकर कहते हैं: "ओह! एक शत्रु है। चलो, उसे कुचल देंगे।" लेकिन उसके लिये तुम्हारे अंदर ज्ञान और बहुत अधिक प्राणिक शक्ति होनी चाहिये। तुम्हें प्राण की दृष्टि से विशाल होना चाहिये। यह सबके लिये संभव नहीं है।

इस तरह बहुत-से अलग-अलग रास्ते होते हैं। सभी अच्छे हैं। अगर तुम जानते हो कि कौन-सा तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल है और तुम उसका उपयोग करना जानो।

अब एक छोटा-सा इलाज है जो बहुत सरल है, क्योंकि यह सहज-बुद्धि के एक

छोटे-से निजी प्रश्न पर आधारित है...। तुम्हें जरा अवलोकन करना चाहिए और कहना चाहिये कि जब तुम डरते हो तो मानों तुम्हारा डर उस चीज़ को खींच रहा है जिससे तुम डरते हो। अगर तुम बिमारी से डरते हो तो मानों तुम बिमारी को खींचते हो अगर तुम किसी दुर्घटना से डरते हो तो मानों तुम दुर्घटना को आकर्षित करते हो। और अगर तुम अपने अंदर और अपने चारों ओर जरा नजर डालो तो तुम यह जान लोगे, यह एक अटल सत्य है। तो अगर तुम्हारे अंदर जरा भी सहज-बुद्धि है तो तुम कहोगे: "किसी चीज से डरना मूर्खता है। यह तो ठीक वैसा है मानों मैं उसे अपने पास आने के लिये इशारा कर रहा हूं। अगर मेरा कोई दुश्मन होता जो मेरी हत्या करना चाहता तो मैं जाकर

उससे यह ना कहता: 'जानते हो, मैं ही हूं जिसकी तुम हत्या करना चाहते हो!'" यह कुछ वैसी ही बात है। इसलिये, चूंकि डर बुरा है इसलिये हम उसे ना रखेंगे। अगर तुम यह कहो कि तुम उसे तर्क करके रोक नहीं सकते तो इससे यह प्रकट होता है, कि तुम्हें अपने ऊपर अधिकार नहीं है और तुम्हें अपने-अपको वश में करने के लिये कुछ प्रयास करना चाहिये। बस यही है।

रहस्यवादियों के लिये सबसे अच्छा इलाज यह है कि जैसे ही किसी चीज का डर लगने लगे, बस भगवान् के बारे में सोचें और उन्हीं की भुजाओं में या उनके चरणों से चिपट जायें और भीतर या बाहर होने वाली हर चीज की जिम्मेदारी उन्हीं के ऊपर छोड़ दें- भय तत्काल गायब हो जायेगा।



आंतरिक परिपूर्णता

श्री माँ

किसी ने मुझसे पूछा है कि चंपा पुष्प के आध्यात्मिक अर्थ 'आंतरिक परिपूर्णता' का क्या आशय है। आंतरिक परिपूर्णता एक नहीं, वरन् इस पुष्प की पंखुरियों की भांति पांच पूर्णताएं होती है। हम पहले कह चुके हैं, वे हैं: । किंतु सच पूछा जाये तो, मैं जब यह पुष्प देती हूं, तब सर्वदा मेरा आशय अंतर की इन्हीं पांच पूर्णताओं से नहीं होता। मेरा आशय एक ऐसी चीज से होता है जो बहुत तरल होती है और परिस्थितियों तथा व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार बदलती रहती है।

किंतु हर दशा में, पांचों परिपूर्णताओं में से जो सबसे पहली है, जो सभी समयों में सर्वदा विद्यमान रहेगी, वह है सच्चाई। क्योंकि, यदि सच्चाई विद्यमान ना हो तो हम आगे नहीं बढ़ सकते, आधा डग भी नहीं...।

परन्तु इसे एक और शब्द के द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है, वह है । मैं इसकी व्याख्या कर दूं। जब कोई व्यक्ति मेरे सामने आता है, मैं उसकी आंखों में ताकती हूं। यदि वह व्यक्ति सच्चा या पारदर्शक होता है तो उसकी आंखों के द्वारा मैं उसके अन्दर उतर जाती हूं, मैं उसकी अंतरात्मा को स्पष्ट रूप में देख लेती हूं। किंतु, - ठीक ऐसा ही अनुभव होता है, - कभी कभी मुझे एक छोटा-सा बादल दिखायी देता है। मैं और आगे ताकती हूं और कभी-कभी

एक दीवाल दिखायी देता है; फिर कोई बिल्कुल ही काली-सी चीज दिखती है। मुझे इन सबके बीच से निकलना होता है; प्रवेश करने के लिए सुराख बनाने होते हैं और फिर भी यह निश्चित नहीं होता कि अंतिम क्षण में मुझे कोई कांसे का दरवाजा नहीं मिल जायेगा जो इतना मोटा होगा कि उसे पार करना कभी संभव नहीं होगा और उस व्यक्ति की अंतरात्मा को देखना असंभव हो जायेगा। ऐसी दशा में मैं तुरंत यह कह सकती हूं कि वह व्यक्ति सच्चा नहीं है। अधिक साहित्यिक भाषा में ऐसा भी कह सकती हूं कि वह व्यक्ति पारदर्शक नहीं है। तो यह हुई पहली चीज।

एक और चीज है जो प्रगति की इच्छा रखने वालों के लिए स्पष्ट ही खूब आवश्यक होती है और यह है । तुम एक अन्य शब्द का प्रयोग कर सकते हो, यह शब्द अधिक समय लगता है, पर मेरी दृष्टि में, अधिक महत्वपूर्ण है; यह है विश्वास। क्योंकि, - यह अनुभव का प्रश्न है- यदि तुम्हारी श्रद्धा भगवान् के प्रति पूर्ण विश्वास से निर्मित नहीं है तो तुम्हें यह ख्याल तो सरलता से बना रह सकता है कि तुम्हें श्रद्धा है किंतु तुम धीरे-धीरे भगवान् की शक्ति पर से या उनकी दयालुता पर से, या भगवान् का जो तुम पर विश्वास है उस पर से अपने समस्त विश्वास को खोते जाओगे- ये मार्ग में रोड़े अटकाने वाली तीन बाधाएं होती हैं।

सर्वप्रथम कुछ ऐसे लोग होते हैं जो यह दावा करते हैं कि उन्हें भगवान् में अडिग श्रद्धा है; वे कहते हैं, "भगवान् ही सब कुछ करते हैं, भगवान् ही सब कुछ कर सकते हैं। मुझमें या दूसरों में, हर जगह, जो कुछ भी घटित होता है, वह सब भगवान् का, केवल भगवान् का ही कार्य है।" किंतु यदि वे अपनी विचारधारा का अनुसरण कुछ उचितता से करें तो थोड़े दिनों के बाद दुनिया में होने वाले अति भयावने कुकर्मों के लिए, सभी बुरी बातों के लिए भगवान् पर दोष लगाने लगेंगे। यदि उनमें विश्वास ना हो तो वे भगवान् को वास्तव में एक निर्दयी और भयंकर दैत्य बना देंगे।

अथवा, उनमें श्रद्धा तो होती है पर वे कहते हैं: "हां, मुझे भगवान् में श्रद्धा तो है, किंतु यह संसार कैसा है यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। पहली बात तो यह है कि मैं इतना अधिक कष्ट पाता हूं, मैं बहुत दुःखी हूं, अपने सारे पड़ोसियों से कहीं अधिक दुःखी हूं (तुम सदा ही अपने पड़ोसियों से बहुत दुःखी रहते हो)। निःसन्देह, जीवन मेरे प्रति निर्मम है। तो फिर भगवान् जब भगवान् हैं, दिव्य हैं, संपूर्ण दयालुता, उदारता और सामंजस्य हैं, तब मैं भला इतना दुःखी कैसे हूं? वे निश्चय ही शक्तिहीन होंगे, नहीं तो इतने भले होते हुए भी वे मुझे इतना कष्ट कैसे पाने देते?" यह हुई दूसरी बाधा देने वाली चीज।

एक तीसरी भी है। मैं उन लोगों की चर्चा कर रही हूं जिनमें हम कह सकते हैं

कि एक प्रकार की गलत या अतिरंजित विनम्रता या दीनता होती है; ये लोग कहते हैं, "निश्चय ही भगवान् ने मेरा परित्याग कर दिया है, मैं किसी काम का नहीं हूं, चूंकि भगवान् ने मुझे अपने लिए योग्य पाया है अतः वे मेरे लिए कुछ भी नहीं कर सकते, मुझे यह खेल बंद ही कर देना चाहिए।" अतएव, जब तक तुम अपनी श्रद्धा के साथ-साथ भगवत्कृपा में समग्र और संपूर्ण विश्वास को संयुक्त नहीं कर देते, तब तक तुम्हारे सामने जरूर कठिनाइयां आती रहेंगी।

अब, को लो। यह आंतरिक पूर्णताओं में तीसरी है। हां, भक्ति बहुत अच्छी चीज है, परंतु जब तक उसके साथ अन्य बहुत-सी चीजें ना मिल जायें तब तक वह बहुत गलत रास्ता पकड़ सकती है और बहुत-सी कठिनाइयों में पड़ सकती है।

तुम में भक्ति है और तुम अहंकार को भी बनाये रखते हो। तुम्हारा अहं तुम्हें भक्ति के नाम पर तरह-तरह के कर्म करवाता है, और ऐसी चीजें करवाता है जो भयानक रूप में अहमात्मक होती हैं। उदाहरणार्थ, तुम मात्र अपने विषय में सोचते हो, दूसरों के बारे में नहीं सोचते, ना तो तुम जगत् के बारे में, ना कर्म के बारे में, ना अपने कर्तव्य के बारे में सोचते हो, तुम बस अपनी निजी भक्ति के बारे में सोचते हो और तुम विकट रूप में अहमात्मक बन जाते हो। और तब, जब कि तुम यह पाते हो कि किसी-ना-किसी कारण से भगवान् तुम्हारी भक्ति का प्रयुक्त तुम्हारी आशा के अनुरूप उत्साह

के साथ नहीं देते तो तुम्हें निराशा हो जाती है और तुम उन तीन कठिनाइयों में जा पड़ते हो जिनकी मैंने अभी चर्चा की है: या तो भगवान् निर्मम हैं- हमने भक्तों की ऐसी बहुत-सी कहानियां पढ़ी हैं जिनमें भक्त भगवान् की इसलिए निंदा करते हैं कि वे उनके प्रति पहले के समान ना तो दयालु हैं और ना उनके समीप; वरन् वे उनसे अलग हट गये हैं। "तुमने क्यों मुझे त्याग दिया है? तुम मेरा पतन करा रहे हो ऐ दैत्य!" शायद उन्हें यह शब्द कहने का साहस तो नहीं होता, पर वे सोचते ऐसा ही हैं; अथवा वे ऐसा कहने लगते हैं, "ओह, मैंने निश्चय ही कोई ऐसी बड़ी भूल की होगी जिसके कारण मुझे त्याग दिया गया है", और वे निराशा की स्थिति में जा पड़ते हैं।

अतएव भक्ति के साथ-साथ एक और भाव जुड़ जाना चाहिए और वह है कृतज्ञता। कृतज्ञता का यह भाव बना रहना चाहिए क्योंकि भगवान् का अस्तित्व है आश्चर्य से पूर्ण यह कृतज्ञता की भावना बनी रहनी चाहिए जो तुम्हारे हृदय को वास्तव में महान आनन्द से भर देती है क्योंकि विश्व में कोई चीज विद्यमान है जो भगवान् है, और यहाँ केवल पैशाचिकता ही नहीं जिसे हम देखते हैं- क्योंकि भगवान् हैं, क्योंकि भगवान् यहाँ हैं। और जब-जब कोई जरा-सी चीज तुम्हें भागवत अस्तित्व के इस महान् सत्य के संस्पर्श में ला देती है तब-तब तुम्हारा हृदय ऐसे तीव्र और अद्भुत आनंद से, ऐसी कृतज्ञता से परिपूर्ण हो जाता है जिसका स्वाद सभी वस्तुओं में

सबसे अधिक सुंदर होता है। कोई दूसरी चीज तुम्हें ऐसा आनंद नहीं दे सकती जो कृतज्ञता से प्राप्त आनंद के समान हो। तुम किसी पक्षी का कलरव सुनते हो, किसी पुष्प को देखते हो, किसी शिशु की ओर ताकते हो, उदारता के किसी कार्य का निरीक्षण करते हो, कोई सुंदर वाक्य पढ़ते हो, सूर्यास्त के दृश्य के सामने खड़े होते हो, कौन-सी चीज है इससे कुछ अंतर नहीं, - अकस्मात् यह भावना तुम्हारे ऊपर छा जाती है, एक प्रकार का भाव उत्पन्न हो जाता है, और वह कितना तीव्र, कितना गहरा होता है, क्योंकि विश्व भगवान् को प्रकट करता है, क्योंकि विश्व के पीछे कोई ऐसी चीज है जो भगवान् है।

अतः मेरे विचार में कृतज्ञतारहित भक्ति बिलकुल ही अधूरी होती है, भक्ति के साथ कृतज्ञता भी अवश्य रहनी चाहिए।

इसके बाद आती है चौथी पूर्णता:। इसे साहस भी कहा जा सकता है। यह ऐसा साहस है जिसमें महान् साहसिकता का स्वाद होता है। महान् साहसिकता का यह स्वाद ही है अभीप्सा- वह अभीप्सा जो तुम्हें सम्पूर्णतः जकड़ लेती है और तुम्हें भगवान् की खोज के महान् साहसिक कार्य की ओर, भगवान् से मिलन प्राप्त करने के महान् साहसिक कार्य की ओर, इससे भी अधिक बड़ा साहसिक कार्य जो है भगवान् को प्राप्त करना, उसकी ओर तुम्हें धकेल देती है और धकेल देती है कोई हिसाब-किताब किये बिना, कुछ बचाये बिना, पीछे हटने की कोई संभावना रखे बिना। और तुम इस

साहसिक कार्य में कूद पड़ते हो पीछे की ओर देखे बिना, एक क्षण के लिए भी यह पूछे बिना कि क्या होगा? क्योंकि यदि तुम यह प्रश्न करो कि क्या घटित होने जा रहा है तो तुम कभी आरंभ नहीं करोगे, तुम धरती पर दोनों पांव जमाकर इस भय से वहीं के वहीं खड़े रह जाओगे कि तुम कुछ खो ना बैठो, तुम अपना संतुलन ना गंवा दो।

इसीलिए मैं साहसिकता की बात कह रही हूँ। किन्तु यथार्थ में यह अभीप्सा है। यह दोनों तत्वों का मिश्रण है। सच्ची अभीप्सा वह चीज है जो साहस से पूर्ण होती है।

अब आती है पांचवी पूर्णता, । श्रीअरविन्द कहते हैं कि योग करने की पहली और अपरिहार्य शर्त है समर्पण। अतः इसके बारे में हम ऐसा नहीं कह सकते कि समर्पण आवश्यक गुणों में से एक है; बल्कि यह तो योग प्रारंभ करने के लिए एकदम प्रथम अनिवार्य मनोभाव है। यदि तुमने पूर्ण समर्पण करने का निश्चय नहीं किया है तो तुम आरंभ ही नहीं कर सकते। किंतु तुम्हारे समर्पण को पूर्ण बनाने के लिए अन्य सारे गुण आवश्यक हैं: सच्चाई, श्रद्धा, भक्ति और अभीप्सा।

और, अब मैं एक और जोड़ दूँ: वह है । क्योंकि यदि निरुत्साहित हुए बिना, कार्य अत्यंत कठिन है ऐसा बहाना बनाकर उसे छोड़े बिना कठिनाइयों का सामना ना कर सको, यदि तुम थपेड़े खाते हुए अपना प्रयास ज्यों का त्यों जारी ना रख सको, उन्हें, जैसा कि कहा जाता है, तुम अपनी 'जेब में' ना रख सको, - तुम पर थपेड़े

पड़ते हैं तुम्हारी त्रुटियों के कारण और तुम उन्हें अपनी जेब में डाल देते हो और डगमगाये बिना आगे चलना जारी रखते हो- यदि तुम सहिष्णुता के साथ ऐसा ना कर सको तो तुम बहुत दूर तक नहीं जा सकोगे; पहले मोड़ पर ही जब तुम्हारा तुच्छ अभ्यस्त जीवन आंखों से ओझल होगा, तुम निराश हो जाओगे और इस कार्य को छोड़ बैठोगे।

सहिष्णुता का सबसे स्थूल रूप है अध्यवसाय। जब तक तुम यह निश्चय नहीं कर लेते कि यदि आवश्यकता पड़े तो तुम एक ही चीज को हजार बार फिर से शुरू करोगे, तब तक तुम कहीं नहीं पहुंच सकते। लोग हताश होकर मेरे पास आते हैं और कहते हैं: "किंतु मैंने तो सोचा था कि यह काम हो चुका है, और अब मुझे फिर से शुरू करना पड़ सकता है!" और यदि उनसे यह कहा जाता है, "पर यह तो कुछ भी नहीं है, तुम्हें शायद सौ बार, दो सौ बार, हजार बार शुरू करना होगा," तो वे सारा साहस गंवा देते हैं। तुम एक डग आगे बढ़ते हो और मान लेते हो कि तुम मजबूत हो गये, परंतु सदा ही कोई-ना-कोई ऐसी चीज रहेगी जो थोड़ा आगे जाने पर वही कठिनाई ले आयेगी। तुम मान लेते हो कि तुमने समस्या हल कर ली है, पर वह जिस रूप में आकर खड़ी होगी वह देखने में थोड़ा-सा भिन्न होगा, किंतु समस्या ठीक वही-की-वही होगी।

अतएव, कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनको एक सुंदर अनुभव होता है और वे चिल्ला

उठते हैं, "अब यह पूरा हो गया!" फिर चीजें धीरे-धीरे स्थिर होती हैं, धीमी होने लगती हैं, पर्दे के पीछे चली जाती हैं और अकस्मात् ही बिलकुल अप्रत्याशित चीज, बिलकुल ही सामान्य चीज, जो जरा भी दिलचस्प नहीं मालूम होती, उन लोगों के सामने आ खड़ी होती है और मार्ग बंद कर देती है। तब वे रोने-धोने लगते हैं और कहने लगते हैं, "मैंने जो प्रगति की वो किस काम की हुई, यदि मुझे फिर से शुरू करना पड़े! ऐसा क्यों हुआ? मैंने प्रयास किया, मैं सफल भी हुआ, मैंने कुछ पाया, और अब ऐसा लग रहा है मानों मैंने कुछ भी ना किया हो। यह सब बेकार है।" इसका कारण यह है कि "मैं" अभी तक विद्यमान है और इस "मैं" में सहिष्णुता नहीं है।

यह बहुत ही आवश्यक है।

अब संक्षेप में कहें तो हमारी सूची में सबसे ऊपर आयेगा समर्पण, अर्थात् हम

इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि पूर्णयोग करने के लिए अपने-आपको संपूर्णतः भगवान् के चरणों में समर्पित करने का निश्चय करना ही होगा। और कोई मार्ग नहीं है, बस, यही है मार्ग, बाद में आते हैं ये पांच गुण या आंतरिक परिपूर्णता:

1. सच्चाई या पारदर्शिता।
2. श्रद्धा या विश्वास।
3. भक्ति या कृतज्ञता।
4. अभीप्सा या साहस।
5. सहिष्णुता या अध्यवसाय।

सहिष्णुता का एक और रूप होता है निष्ठा। निष्ठावान् होना। तुमने एक निश्चय किया है और तुम उस निश्चय के प्रति एकनिष्ठ बने रहते हो; यही है सहिष्णुता। यदि तुममें लगन हो तो एक क्षण आयोगा जब तुम्हें विजय प्राप्त हो जायेगी।

विजय उन्हें ही मिलती है जिनमें सबसे अधिक लगन होती है।



एक महामानव की महायात्रा

-डॉ. के. एन. वर्मा

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर एक ऐसे महामानव थे जिनका अविर्भाव उस समय हुआ जब पृथ्वी पर भगवान् की पथयात्रा चल रही थी। श्रीअरविन्द और श्रीमांकी पृथ्वी पर उपस्थिति से एक नये युग का प्रारंभ हो चुका था। अतिमानस के प्रकाश को वहन कर उसे जड़ द्रव्य की अचेतन गहराई तक ले जाने के लिये दैवी शक्तियाँ मनुष्य का रूप धारण कर पृथ्वी पर लगातार उतर रही थीं। वे अपने उस स्रोत से जुड़ने के लिये अलग-अलग ढंग से आलोक पथ की खोज में चल पड़ी थीं। जिसके आह्वान पर ये आत्मायें धरती पर कूदीं। श्रीअरविन्द कहते हैं-



I saw the Omnipotent's flaming pioneers
Over the heavenly verge which turns towards life
Come crowding down the amber stairs of birth;
Forerunners of a divine multitude.

धरती पर आते ही आत्मिक लोक की दृष्टि ओझल हो जाती है। उद्देश्य भूल जाते हैं। स्मृति खो जाती है। पथ अदृश्य हो जाती है। इन्हें नये सिरे से खोजना पड़ता है जिसके लिये जीवन भर यात्रयें करनी पड़ती हैं और भवितव्यता भाग्य बनकर खोजी को भटकाती है-

A seeker of hidden meanings in life's forms,
Of the great Mother's wide uncharted will
His paths are found for him by silent fate.

-Savitri

अतएव फ़क़ीर को भी अपने हिस्से की यात्रायें करनी पड़ें! वे इस पदयात्रा की अगली पंक्ति में शामिल हुये और अपने जन्म से लेकर जीवन की अंतिम घड़ी तक

यात्रा ही करते रहे। उनकी मंजिल उस परम सत्य का वाहक बनकर अपनी प्रत्येक सांस में ढोना था जिसका दिव्यावतरण पृथ्वी में हो रहा था। लेकिन इनकी यात्रायें सामान्य यात्रायें नहीं थीं। ये उनकी ऊँचाई के हिसाब से लम्बी थीं और शक्ति के हिसाब से दुर्गम ही नहीं, अलौकिक और रोमांचक थीं। वे जीवनभर चलते रहे। पहले मंजिल को पाने के लिये चले। फिर मंजिल से मंजिलों को छूने के लिये चलते रहे। उनकी इस महायात्रा की कहानियाँ इतनी अद्भुत और विस्मयकारी हैं कि हमें दाँतों तले उंगली दबानी पड़ती है। उनकी कुछ यात्रायें जिन्होंने अपना इतिहास गढ़ा, ये हैं-

झेलम से पाण्डिचेरी तक की यात्रा

जौहर साहब पंजाब प्रांत के जिला झेलम के एक छोटे से पहाड़ी गाँव बहाली के निवासी थे। उनके पिता कहानचन्द बन्दोवस्त विभाग में गिरदावर कानूनगो के एक मामूली पद पर कार्यरत थे। पालन-पोषण ग्रामीण वातावरण के बहुत पिछड़े इलाके में अति सामान्य व्यक्ति की तरह हुआ। इस गुमनाम इलाके में जाने के योग्य जीवन के दर्शन तक दुर्लभ थे। सभ्यता और संस्कृति से कोसों दूर खपरैल छप्पर के नीचे उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। भाग्य का चक्कर कुछ ऐसा चला कि पिता की एक मामूली डाँट पर घर छोड़ दिया और गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में कूद पड़ने के लिये भाग कर दिल्ली आ गये। गाँव का निवासी जैसे अंतर्राष्ट्रीय नगरी में एक असभ्य प्राणी से अधिक कुछ नहीं होता चाहे भले ही उसके हृदय में सम्राटों का सम्राट बसता हो। अतएव इस अजनबी को जीविका के लिये दर-दर की ठोकें खानी पड़ीं। कंगाली में कई आटा गीला हुआ पर तकदीर के सिकन्दर-सिकन्दर लाल ने जीवन में कभी हार नहीं मानी। अरमान इतने ऊँचे थे कि एक ओर पेट की रोटी के लिये युद्ध तो दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार से युद्ध-इन दोनों मोर्चों पर वर्षों तक वे लड़ते रहे। आर्यकुमार सभा और दिल्ली कांग्रेस कमेटी दोनों ही अखिल भारतीय संस्थाओं में काम करते हुये अपनी सच्चाई, निष्ठा और कर्मठता को तराशा और अपने चरित्र को तपे हुये सोने की तरह निखारा। एक दिन महात्मा गाँधी के प्रधान कार्यकर्ताओं में उनकी गिनती होने लगी। साहस, बहादुरी, राष्ट्रभक्ति और उनकी संकल्पशक्ति ने उन्हें राजनेताओं के शिखर पर आरूढ़ करा दिया।

लेकिन अपनी इस सफलता की चोटी पर लात लगा कर उन्होंने फिर जीवन की दिशा बदल दी। अपनी यात्रा का पथ बाहर से भीतर की ओर मोड़ दिया।

उन्होंने आत्मा की उस आवाज को सुना जिसके भीतर से उनके जीवन की नियति पुकार रही थी। मिट्टी के घरोंधे से दिल्ली के कुतुब तक और कुतुब से छलांग लगाकर देश की पूरी लम्बाई को पार करते हुये एक ही उड़ान में पाण्डिचेरी पहुँच कर उन्होंने जगन्माता के चरणों को पकड़ लिया जहाँ उन्हीं के शब्दों में मैंने अपना हृदय खो दिया और आत्मा तथा जीवन पा लिया।

बस जिन्दगी का आखिरी रंग चढ़ गया। मंजिल मिल गई। ललाट की वह इबारत दिख गई, जिसके लिये यह आत्मा देव लोक से पृथ्वी पर कूदी थी।



हमारे पर्वतः हमारा गौरव

-रूपा गुप्ता

बेकन के अनुसार बचपन में यात्रा करना शिक्षा का एक भाग है, जबकि बड़े होने पर यह एक अनुभव है। यद्यपि हम सभी स्थानों के बारे में पुस्तकों में भी पढ़ सकते हैं और चित्र भी देख सकते हैं साथ ही आजकल विडियोज़ के माध्यम से उस स्थान को और अच्छी तरह देख व जान सकते हैं परन्तु उस स्थान पर जाकर उसे देखने, छूने व

अनजाने रोमांचकारी अनुभवों का कोष बन जाता है। जिनको मनोविज्ञान में रूचि होती है वे नये परिवेश में मनुष्यों के स्वभाव की भिन्नता को समझ पाते हैं।

मुझे अपने जीवन की अनेक यात्राओं की श्रंखला में पिछले सप्ताह श्री अरविन्द की शिक्षाओं के सन्दर्भ में श्री अरविन्द आश्रम, दिल्ली की तरफ से तारा दीदी



अनुभव करने की अनुभूति एक अलग ही सन्तुष्टि व रोमांच प्रदान करती है। यह समय के सदुपयोग का उत्तम तरीका है। एक यात्री का जीवन नित नये व अनेक

व अन्य आश्रमवासियों के साथ एक नये पर्वतीय स्थल तल्ला रामगढ़ में मधुबन व नैनीताल में वननिवास की यात्रा करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। आश्रम से जुड़ने

के साथ ही तारा दीदी ने जब अनायास ही मुझे व मेरी सहयोगी को साथ चलने के लिये कहा तो हम खुशी से तैयार हो गये। मेरी सहयोगी ने टिकट की व्यवस्था कर दी और हमारी टिकटें 28 सितम्बर के लिये शताब्दी से बुक करा दी गयीं। तीसरे ही दिन हम 6 लोग दिल्ली आश्रम से काठगोदाम के लिये निकल पड़े।

यात्रा का शुभारम्भः

प्रातः 5:30 हम दिल्ली आश्रम से रवाना हुए। प्रातःकाल का जलपान ट्रेन में ही मिल जाता है। यात्रा और भी सुखद हो जाती है यदि उसमें पर्याप्त आराम व उत्तम भोजन की व्यवस्था हो। रास्ते भर तारा दीदी ने बच्चों की तरह हमारा ध्यान रखा। वह एक सीट से दूसरी सीट पर जाकर हम सब के बैठने की उचित व्यवस्था देख रही थीं। सामान्यतया मेरी रेल यात्रा बहुत शान्त होती है और मैं खिड़की से बाहर प्रकृति को देखते अथवा किसी मनपसन्द पुस्तक में खोये हुए समय बिता देती हूँ। लेकिन उस दिन हम सब रास्ते में बच्चों की तरह आपस में ढेर सारी बातें करते गये। आश्रम के अन्य साथी उसी कूपे में थे और बार-बार अपनी सीट से दूसरी सीट पर जाकर एक दूसरे का हाल चाल ले रहे थे, गप्पें मार रहे थे।

काठगोदान पहुँचते हुए लगभग 12 बज गये थे और तारा दीदी ने भोजन करके ही ऊपर मधुबन चलने का प्रस्ताव रखा जो सबको सहर्ष मान्य हो गया। उन्होंने हमें

उडिपी में लंच करवाया मुख्यतया दक्षिण भारतीय, इडली, डोसा, वड़ा।

भोजन के बाद लगभग एक बजे हम कार से तल्ला रामगढ़ के लिये निकल पड़े। काठगोदाम से ही आकाश को छूती पर्वतमालाएं नजर आने लगती हैं और यात्री बड़े उत्साह और बेसब्री से उनको पास से देखने के लिये उत्सुक हो जाता है। कहते हैं 'दूरतः पर्वताः रम्याः' अर्थात् पर्वत दूर से देखने पर ही सुन्दर दिखते हैं। शायद यह कहावत पहले पर्वतों के कठिन जीवन व दुर्गम रास्तों के कारण बनी रही होगी लेकिन आज की स्थिति भिन्न है। उत्तम सड़कों के निर्माण व यातायात के अनेक साधनों के कारण आज पर्वतीय क्षेत्रों में भी मैदानी भागों जैसी अनेक सुविधायें पहुंच चुकी हैं। पहाड़ों के घुमावदार रास्तों से होते हुए तल्ला रामगढ़ की तरफ जाते हुए हरे भरे पेड़ों से लदे हुए उँचे पहाड़ और गहरी घाटियों को देख कर प्रकृति की सुन्दरता और भारतवर्ष के गौरव से मन भर आया।



मधुबन- हिमालय की सुन्दर पहाडियों के बीच बसा प्रकृति की गोद में एक सुन्दर पुष्प

हम लगभग 3 बजे तल्ला रामगढ़, मधुबन पहुँचे। आश्रम पहुँचने के लिये थोड़ी चढ़ाई चढ़नी होती है। अगर आपने शहर की चहल पहल से दूर अपना कुछ समय किसी शान्त स्थान में बिताने और मानव रूप में ईश्वर की सेवा करने का स्वप्न देखा हो तो समझ लीजिये उसने आपको अपने काम के लिये चुन लिया है।

शान्त मधुबन आपको बुला रहा है। आश्रम बहुत ही सुन्दर बना हुआ था जैसे पहाड़ों के बीच एक छोटा सा स्वर्ग, चारों तरफ हरियाली और आश्रम में अनेक प्रकार के पुष्प, जिसमें कमल के फूल का छोटा सा ताल भी शामिल है। ऊपर से नीचे देखने पर चारों तरफ पहाड़ों से घिरी घाटी में नीचे तलहटी में बहती नदी दिखायी देती है। इधर उधर छितरे हुए मकान हरे रेशम के वस्त्र पर मोती जैसे टंके दिखायी देते हैं।

यहां भोजन और कमरों की बहुत सुन्दर व साफ सुथरी व्यवस्था है। यहां की भोजन व्यवस्था अधिकतर स्वैच्छिक रूप से कार्य करने वाले अति उत्तम प्रकार से करते हैं। प्रातःकाल की प्रथम चाय के उपरान्त लगभग साढ़े सात बजे ब्रेकफास्ट लगा दिया जाता है। ब्रेकफास्ट में दूध, चाय व अन्य कुछ भी ताजा बना हुआ उपमा, परांठा व कार्नफलेक्स तथा



फलों के रूप में आप भली-भँति प्रातः एक पौष्टिक स्वादिष्ट ब्रेकफास्ट का आनंद ले सकते हैं।

दिन का भोजन 12 बजे मिल जाता है तथा संध्या चाय 4 बजे व रात्रि का भोजन भी साढ़े 7 बजे तक लगा दिया जाता है। श्री अरविन्द व श्री मां की आराधना के उपरान्त भोजन अत्यन्त प्रेम से खिलाया जाता है।

शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ इस बार हमें आध्यात्मिक ट्रीट भी मिल गयी। वेदान्त की शिक्षाओं के सन्दर्भ में लगभग 30 लोगों का एक ग्रुप एक सप्ताह के लिये मधुबन आश्रम में ठहरा हुआ था जिसमें हमें सौभाग्य से समवेत स्वर में श्रीमदभगवद्गीता का संस्कृत पाठ, भजन और वेदान्त की शिक्षायें भी मिलीं व हमारा मधुबन प्रवास और भी सफल हो गया।

तल्ला रामगढ़ वैसे तो एक छोटा सा गांव है पर यहां पर 12वीं तक स्कूल है। यहां आप स्वैच्छिक रूप से कार्य करते हुए कितने भी दिन रह सकते हैं तथा

निम्न कार्यों में से अपनी रुचि का कार्य चुन सकते हैं-

- × बागवानी को अपनी रचनात्मक रुचि के अनुसार आकार देने में मदद कर सकते हैं।
- × यहां की रसोई में अपनी रुचि के अनुसार भोजन बना कर खिला सकते हैं।
- × यहां के क्षेत्रीय बच्चों को पढ़ा सकते हैं और उनको अन्य कलायें सिखा सकते हैं।
- × कोई नयी परियोजना आरम्भ कर सकते हैं।
- × आप अपना ग्रुप लाकर कोई शैक्षिक व आध्यात्मिक वर्कशाप कर सकते हैं।
- × वेदान्त, आत्म-विकास, योग और जीवन के समग्र विकास पर आवासीय कैम्पस आयोजित कर सकते हैं। साथ ही बच्चों और युवाओं के लिये एडवेंचर कैम्पस भी आयोजित कर सकते हैं।
- × यहां की टेलरिंग यूनिट में आप बैग्स, पाउच्ज इत्यादि सिल कर अपनी रचनात्मक को नये-नये आकार दे सकते हैं।

यहां रह कर हम सब ने अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार मिल कर वहां आने वाले अन्य ग्रुप्स की व्यवस्था की, व हमारी सहयोगी ने रसोईघर में अपना विशेष योगदान दिया। यहां की आलूबुखारे की

चटनी, व जैम मुख्यतया वहीं के लोगों द्वारा विशेष रूप से बिना किसी कैमिकल प्रयोग के बनायी जाते हैं और बहुत ही स्वादिष्ट होते हैं।

माउन्ट पैराडाइज़: तल्ला रामगढ़ से कुछ ही दूरी पर माउन्टेन पैराडाइज़ है। यह 24 एकड़ में बसा एक फलों का बाग है जो एक बहुत खूबसूरत व एकान्त स्थान है। यहां रह कर आप शान्त वातावरण में आस पास के लैंडस्केप्स बना सकते हैं अथवा अन्य पेन्टिंग कर सकते हैं, संगीत का आनन्द ले सकते हैं, या सिर्फ कुछ समय अपने साथ बिता सकते हैं। यहां के वर्तमान कार्य फल उगाना और पैक करके लोकल बाजार में बेचना है।

वननिवास:

मधुबन से तीसरे दिन हम अपनी मुख्य योजना अनुसार वननिवास, नैनीताल के लिये निकल गये। समुद्र की सतह से लगभग 1938 मीटर की ऊंचाई





पर स्थित विश्व प्रसिद्ध पर्यटन स्थल नैनीताल एक बेहद खूबसूरत स्थान है। यहाँ की ऊँची-ऊँची पर्वत श्रृंखलायें, हरे भरे पेड़ और ठंडी हवायें किसी का भी दिल जीत सकती हैं। प्रकृति ने इस क्षेत्र को बेशुमार सौन्दर्य प्रदान करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह उत्तरांचल का सबसे सुन्दर दर्शनीय पर्वतीय स्थल है तथा अंग्रेजों को बहुत प्रिय था। यहाँ के वातावरण को देख कर वे इसे छोटी विलायत कहते थे। यहाँ की अधिष्ठात्री नैना देवी हैं जिनका सुन्दर मन्दिर ठीक ताल के साथ ही बना हुआ है जिनके नाम पर इसका नाम नैनीताल पड़ा। इस अद्भुत व अनुपम सौन्दर्य युक्त ताल की लम्बाई एक किलोमीटर व गहराई का कोई छोर नहीं है। यहाँ नौका विहार की भी उत्तम व्यवस्था है। नैनीताल के साथ ही भीमताल, व सात ताल हैं।

नैनीताल की प्रमुख चोटियों में व्यू की चोटी, नैना पीक व टिफिन टॉप हैं। व्यू की चोटी से नैनीताल की नैसर्गिक सुन्दरता के साथ-साथ, विश्व के सबसे सुंदर बर्फ से आच्छादित मनोहारी हिमालय पर्वत

श्रृंखलाओं का अद्भुत सौन्दर्य देखने में आता है। यहाँ से डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर नैना पीक है जहाँ से चाइना बार्डर दिखायी देता है।

फूलों से सजा, श्रीमां के महती स्वप्न का एक छोटा, प्यारा सा साकारीकरण है। यह नैनीताल की लैंडस एन्ड और नैना पीक के लिये जाते हुए थोड़ा ऊपर की तरफ बसा हुआ एक सुन्दर पहाड़ी स्थल है। पूर्व में इसका नाम बैन-नैविस था। सुना है स्कॉटलैंड में एक रमणीक पर्वत है जिसका नाम बैन-नैविस है और उसी के नाम पर इसे यह नाम दिया गया था। इसे नेपाल के राणा ने, जो श्री अरविंद के भक्त थे, किसी अंग्रेज से खरीदा था। उससे यह स्थान श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर, श्रीमां के अनन्य भक्त ने खरीदा और इसका नामकरण उसी से मिलता जुलता ऽवननिवास कर दिया।

प्रारम्भ से ही श्रीमाने एक स्थान का स्वप्न देखा था जहाँ आध्यात्मिकता के खोजी अपना पूरा समय आध्यात्मिक जीवन को समर्पित कर सकें। उन्हीं के शब्दों में, “पृथ्वी को एक ऐसे स्थान की आवश्यकता है जहाँ साधक, सामाजिक रीतियों, अपनी खुद की बनायी विरोधाभासी नैतिकताओं, भूतकाल की गुलामी और धार्मिक लड़ाइयों से मुक्त होकर स्वयं को पूरी तरह दिव्य चेतना जो अपने आपको सम्पूर्ण से प्रगट करना चाह रही है की खोज और उसकी साधना में लगा सकें... जहाँ सद्भाव और सच्ची लगन वाले सभी



मनुष्य एकमात्र प्रभुसत्ता, परमसत्ता से निर्देशित रह सकें...”

यहां समय-समय पर भारत के अनेक स्थानों से लोग आकर कैम्पस आयोजित करते हैं जो आध्यात्मिक व शैक्षिक श्रेष्ठता से ओतप्रोत होते हैं। जहां पहले अगर कोई ग्रुप पहाड़ों में घूमने जाना चाहता था तो उसे आवासीय व भोजन सम्बन्धी अनेक कठिनाइयां उठानी पड़ती थीं। वननिवास ना केवल इस कमी को पूरा करता है लेकिन उन्हें एक ऐसा वातावरण भी प्रदान करता है जहां रह कर वे अपने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को भी उत्तम बना सकें। बिजली का सारा काम यहां सोलर एनर्जी से ही होता है इसलिये गरम पानी की भी उचित व्यवस्था रहती है।

हमारा यहां श्री अरविन्द व श्रीमां की शिक्षाओं पर आधारित 7 दिन का कैम्प था जिसमें श्री अरविन्द व श्रीमां की विचारधारा से जुड़े अनेक प्रदेशों में स्थित श्री अरविन्द सोसायटी व श्रीमां के स्वप्न नगर ऑरोविल

से अनेक लोग आये हुए थे। हमारी यात्रा एक आध्यात्मिक यात्रा थी। श्री अरविन्द ने भारत की आजादी की लड़ाई पहले सक्रिय राजनीति में भाग लेकर, और बाद में आध्यात्मिक तपस्या से निरन्तर भारत और भारतवासियों को शक्ति प्रदान करके लड़ी। श्री अरविन्द के 5 मुख्य स्वप्न थे जो उन्होंने भारत के लिये देखे थे। सभी कैम्प के सहभागियों को 5 ग्रुप्स में बांट दिया गया था जो एक-एक स्वप्न पर विचार करने और देश व जीवन में उसको किस प्रकार व्यवहारिक रूप प्रदान किया जाये इस पर अपनी-अपनी प्रस्तुति करने वाले थे। हमारा ग्रुप श्री अरविन्द के स्वप्न-“भारत की विश्व को आध्यात्मिक देन” पर कार्यरत रहा। सभी ग्रुप्स ने आखिरी दिन बड़े प्रभावशाली, संगीत और नाटकीय प्रस्तुतिकरण के साथ अपनी-अपनी परियोजना सबके सामने रखी जिनको बहुत सराहा गया।

इसके साथ ही योग, संगीत, मड वर्क, हंसी-हंसी में रोगमुक्ति जैसी कार्यशालाएं व अन्य भी जिसके पास जो-जो कलायें थीं, सबको अपनी-अपनी कलायें बांटने का पूरा-पूरा अवसर मिला। कैम्पवासियों ने ट्रेकिंग, रिवर क्रासिंग और रैपलिंग का भी पूरा-पूरा आनन्द लिया। तारा दीदी और यहां तक कि हमारे ग्रुप की एक सदस्या जो कॉफी लम्बी व जिनका वजन लगभग 100 किलो था, उन्होंने भी बहुत उत्साह से सफलता पूर्वक रैपलिंग में भाग लिया।

एक दिन सभी कैम्प वासियों के लिये नैना पीक जाने का आयोजन किया गया। यह चोटी शहर की सबसे ऊँची चोटी मानी जाती है। यहां ट्रैकिंग पर जाने का अलग ही मजा है। लेकिन यहां मौसम के मिज़ाज का कुछ पता नहीं होता, कभी बारिश तो कभी तेज धूप और बारिश तो अपनी मनमर्ज़ी से कभी भी बरस सकती है इसलिये यदि भीगने का आनन्द नहीं लेना चाहते तो अच्छा होगा छाता या रेनकोट साथ लेकर चलें। नैना पीक आने जाने में लगभग 6 से 7 घंटे का समय लग जाता है। उतरते उतरते सांझ होने लगती है इसलिये ट्रैकिंग पर जाते हुए आवश्यक है कि एक टॉर्च भी साथ ले जायें। अच्छा हो यदि वहां ग्रुप्स में ही जाया जाये, अकेले जाने में रास्ते में कुछ जंगली जानवर और लंगूरों का भय बना रहता है। फूड पैकेट्स

आप साथ ले जा सकते हैं, ऊपर वहां एक छोटा सा ढाबा ही होता है जहां से आप चाय मैगी आदि ले सकते हैं।

उपसंहारः वास्तव में यात्रा एक व्यक्ति के खाली समय को भरने के साथ-साथ ज्ञान अर्जन की उसकी बौद्धिक ललक को भी संतुष्टि प्रदान करती है। कहते हैं यात्रा करना एक महंगा शौक है लेकिन रोजमर्रा की जिंदगी की नीरसता से बाहर निकल कर यात्रा करने, नये स्थानों को देखने और जानने में जो आनन्द है वह हमारे वित्तीय भार की भरपूर भरपाई कर देता है। यह समय के सदुपयोग का सर्वोत्तम तरीका है। रोमांचित एवं आश्चर्य चकित करने वाले स्थल उसके बाल सुलभ उत्साह को जाग्रत रखते हैं और व्यक्ति आयु के भार से ऊपर उठ कर नयी ऊर्जा प्राप्त करता है।



गुरुमंत्र -ज्ञानवती गुप्ता

सेठ रामदास के पड़ोस में कथा हुई। पड़ोसी होने के नाते उन्हें भी जाना पड़ा, यूँ उनकी भगवान् में कोई दिलचस्पी नहीं। कैसे पैसे से और पैसा बनाया जा सकता है, बस यही है उनकी प्रिय वासना।

कथा के पश्चात् महात्माजी को बड़े आदर के साथ एक कमरे में ले जाया गया और बाहर भक्तों को पंक्ति में बिठाये जाने की व्यवस्था होने लगी। रामदास के मन में जिज्ञासा हुई कि क्या ये लोग महात्माजी से सट्टे-वट्टे का नम्बर पूछने के लिये बैठे हैं? उसने सुना था कि कुछ महात्मा लोग ये भी बताते हैं। उसने धीरे से एक भक्त के कान में पूछा, "भाई, यह पातं कैसी लगायी जा रही है?"

"आज महात्मा जी गुरुमंत्र देंगे।"

"कोई भी ले सकता है?"

"हां, जिसकी श्रद्धा हो।"

सेठजी भी बैठ गये। जब उनकी बारी आयी तो महात्मा ने उनके प्रवेश करते ही मुस्करा कर पूछा, "क्यों सेठजी, आपको क्या चाहिये?"

"महाराज, आप गुरुमंत्र देते हैं, मुझे भी गुरुमंत्र चाहिये।"

महात्माजी जोर से हंसे, "आप क्या करेंगे गुरुमंत्र लेकर, वह आपके किस काम का! आप तो मायापति के दास हैं, माया गिनिये माया।"

"नहीं महाराज, मुझ पर भी कृपा करिये पर कुछ ऐसी विधि बताइये जो बहुत कठिन भी ना हो और महाराज, कुछ खर्चा भी ना आये।"

"तो आज आप कुछ लेकर ही जायेंगे।" मुस्कराये महात्माजी।

"बड़ी कृपा होगी महाराज!" हाथ जोड़कर रामदास बोला।

"अच्छा, तो जो कुछ कर रहे हो, जैसा कर रहे हो, करते जाओ, बस एक बात उसमें जोड़ लो कि जो भी काम करो- सवेरे उठने से लेकर रात सोने तक- उसे भगवान् को देते जाओ।"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा महाराज, यह देने की क्या बात है?"

सेठ की घबराहट को तोड़ते हुए महात्माजी मधुर उपहास के स्वर में बोले, "घबराओ नहीं रामदास तुम्हे वस्तु रूप में कुछ नहीं देना है। जैसे स्नान करो, भोजन करो, किसी ग्राहक को कपड़ा फाड़ कर दो... अर्थात् कुछ भी काम करो, करने से पहले यह कह दिया करना, " "भगवानजी, यह तुम्हारे लिये। ठीक है, इतना तो कर लोगे?"

"हां महाराज, इसमें तो कुछ खर्चा भी नहीं है और मेहनत भी नहीं है, यह मैं कर लूंगा।"

"पर एक बात है सेठ रामदास, यह गुरुमंत्र किसी को बताना नहीं। यह गुप्त रखना तभी इसका फल मिलेगा।"

"आप निश्चित रहिये महाराज, मैं कभी किसी को हवा भी नहीं लगने दूंगा। इस कला में मैं खूब माहिर हूँ। मेरे पास कितना रूपया-पैसा है मेरे बीवी-बच्चों तक को नहीं मालूम। फिर यह तो गुरुमंत्र है। आपकी बड़ी कृपा महाराज!" और वह खुशी-खुशी महात्माजी के चरणों में प्रणाम कर, विदा हुआ! आज वह बहुत प्रसन्न था। उसे लोक-परलोक से तारने वाला गुरुमंत्र मिल गया था।

कुछ महीने बड़े आराम से निकल गये। दिवाली आयी। घर में तरह-तरह के पकवान बने, मिठाइयाँ आयी। सेठजी जीमने बैठे यह कहकर, "भगवान् जी, यह सब तुम्हारे लिये।" ग्रास मुंह में डालने ही वाले थे कि किसी ने हाथ पकड़ लिया। सेठजी हड़बड़ाये, "यह क्या, तू कौन है भाई?"

"तुमने अभी कहा था ना- भगवान् जी, यह सब तुम्हारे लिये- मैं अपना हिस्सा लेने आया हूँ।"

"हैं, यह कैसे? महात्माजी ने तो कहा था- तुझे कुछ देना नहीं पड़ेगा फिर तुम कैसे मांगने लगे?"

"ठीक है, जाता हूँ।" और एक मनोहारी मुस्कान बिखेरते हुए भगवान् अदृश्य हो गये।

सेठजी ने खाना तो खा लिया पर रात को जब बिस्तर पर जाकर लेटे तो

वह मृदुल मुस्कान वाला चेहरा बार-बार सामने आने लगा। उन्होंने आज पहली बार यह महसूस किया कि मैंने अच्छा नहीं किया भगवान् जी को इंकार करके, मुझे दे देना चाहिये था, आखिर वे कितना खा लेते। मेरी यह कंजूसवृत्ति! मैंने कभी देना तो सीखा ही नहीं।

सर्दियाँ तो आ ही गयी थीं। सेठजी ने नीचे पहनने के लिये रुई की बंडी बनवायी। वह आशा से अधिक ही सुंदर बनकर आयी। सेठजी हाथ में लेकर इधर-उधर से देखने लगे। बहुत प्रसन्न थे। पहनने से पहले गुरुमंत्र दोहराया। आज फिर भगवान् आकर खड़े हो गये, बोले, "लाओ, यह हमें दे दो, हमें जाड़ा लगता है।"

"भगवान् होकर जाड़ा! तुम्हें किस चीज की कमी है जो इस पर आंख लगाये हो? पूरे पचास रुपये लगे हैं इसे बनवाने में।"

"तो तुम देना नहीं चाहते तो मत दो, जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं जा रहा हूँ।"

"अच्छा, तुम जाने से पहले मेरे एक प्रश्न का उत्तर देते जाओ।"

"बोलो", भगवान् ने बहुत ही मधुर वाणी में कहा।

"तुम ये बार-बार मेरे पास क्यों मांगने आने लगे भगवान् जी, तुम्हें मालूम नहीं कि मैं यहां का जाना-माना कंजूस आदमी हूँ। किसी को कुछ देते हुए मेरे तो मानो प्राण ही निकल जाते हैं। मुझे बहुत मोह

है अपनी दौलत से, अपनी चीजों से। मैं तो स्वयं अपने लिये भी खर्च नहीं कर सकता और तुम ये जो दो बार आये हो, तुम्हें मना तो कर देता हूं पर भीतर दिल दुखता है। पर मुझसे दिया भी नहीं जाता।"

"मैं सब जानता हूं रामदास।" भगवान् ने मुस्कराते हुए कहा।

"फिर तुम मेरे पास क्यों मांगने आते हो प्रभु?" सेठ की आंखों से दो मोटे आंसू ढुलक पड़े।

"मैं तुमसे भोजन या वस्त्र मांगने नहीं, तुमसे तुम्हारी कंजूसवृत्ति मांगने आता हूं रामदास! तुम हृदय के बहुत सरल हो। सहज स्वभाव से हर काम से पहले मुझे याद करते हो। जो मेरा स्मरण करता है, मुझे भी तो उसके लिये कुछ करना चाहिये। तुम कितना कष्ट पा रहे हो इस कंजूसवृत्ति के कारण, पर इसमें से निकल भी नहीं पा रहे, इसीलिये मैं तुम्हारी आदत, तुम्हारे स्वभाव से तुम्हें मुक्त कराने आता हूं।"

"मैं तुम्हें देने से इंकार कर देता हूं, तुम्हें बुरा नहीं लगता? तुम फिर उसी तरह हंसते हुए आ जाते हो।"

"जिनका हृदय सरल और निष्पाप है, उनकी मुझे कोई बात, कोई व्यवहार बुरा नहीं लगता रामदास! वे मेरे प्रियजन हैं। मेरे भक्त अज्ञान में से निकलें, कामनाओं के बंधनों से मुक्त हों, मैं सदा इसी में प्रयत्नशील रहता हूं, यही तो मेरा काम है, मेरा स्वभाव है रामदास! लाओ, तुम देकर तो देखो यह बंडी, तुम्हें कितना सुख मिलेगा तुम सोच भी नहीं सकते!"

प्रभु की दिव्य मधुर वाणी से रामदास का हृदय गदगद् हो उठा, आंखों में प्रेमाश्रु भर आये और उसने वह बंडी प्रभु को अर्पित कर दी। प्रभु मुस्कराते हुए विदा हुए और रामदास ना जाने कितनी देर उसी विभोरावस्था में बैठा रहा। आज भगवान् ने उसकी गुरुमंत्र की हुंडी की अदायगी सूद सहित कर दी थी।



सावित्री

- 'डा. मंगेश नाडकर्णी की वार्ताओं' से,

प्राकट्यः

आइये, हम "दिव्यमाता" के आह्वान के साथ "सावित्री" का ध्यान शुरू करें। यह उद्धरण श्री अरविंद रचित महाकाव्य "सावित्री" के पर्व 3, सर्ग 2, पृष्ठ 314 पर है:-

वह माता खड़ी हुई है जन्म, संघर्ष और भाग्य के ऊपरी शिखर पर
मंदगति से घूमते युग चक्र उसके ही इंगित पर घूमते हैं प्रत्यावर्तन
एकमात्र उसी के हाथ कर सकते हैं। परिवर्तित काल रूपी सर्प का मूलाधार
वही है वह रहस्य जिसे "महानिशा" छुपाये है,
प्राण की रासायनिक ऊर्जा शक्ति भी उसी की है,
वह स्वर्णिम सेतु है, अद्भुत अग्नि-प्रभा है,
वही उस "अज्ञेय" का आलोकित हृदय है,
प्रभु के अन्तःकरण में वही नीरवता की शक्ति है,
वह अमोघ बल है, अपरिहार्य "शब्द" है,
हमारे कठिन ऊर्ध्वारोहण का वही चुम्बकीय आकर्षण है,
वह "सूर्य" है जिससे हम अपना सूर्य करते हैं प्रज्वलित,
अप्रकट लोकों से झाँकता प्रकाश भी वही है,
वही अकल्पित प्रदेशों से इंगित करता आह्लाद है,
वह सबकी "आधारशक्ति" है जो अभी तक नीचे नहीं उतरी है,
समग्र प्रकृति मूक भाव से उसी को पुकारती है
अपने पद-स्पर्श से वह भर देती है जीवन की दुखती धड़कनों के व्रण
वह मनुष्य की धुँधली आत्मा पर से तोड़ देती है अज्ञान की मुहर,
यह पदार्थों के बन्द हृदय में जलाती है अपनी मधुर प्रभा की लौ,
यह समग्र चराचर जीवन बनेगा एक दिन उसका मधुर सदन।
सब विषमताएँ तैयारी करती हैं उसमें समन्वित होने के लिए
उसी की ओर आरोहण करता है हमारा ज्ञान,
उसी का अन्वेषण करती हैं हमारी भावनाएँ
उसी के जादुई आनन्द में हम वास करेंगे
उसी के आलिंगन से हमारी पीड़ाएँ परिवर्तित होंगी उल्लास में
और उसी के द्वारा हमारी आत्मा एक हो जायेगी "सर्वात्मा" में।

किसी भी मानदण्ड से देखें, सावित्री एक विलक्षण महाकाव्य है। यह इस शताब्दी की महान् काव्यात्मक उपलब्धियों में से एक है। रेमेण्ड फ्रैंक पाइपर (Raymond Frank Piper) एक अमेरिकन विद्वान ने आंग्ल साहित्य में इसे "सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य" की संज्ञा दी है। वे कहते हैं:-

"मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि सावित्री महाकाव्य अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है। यह अत्यन्त सुसम्बद्ध, सर्वमुखी, सुन्दर एवं सम्पूर्ण वैश्विक कविता है। अब तक लिखे गये काव्यों में बेमिसाल है। यह प्रतीकात्मक रूप से आदिमूल वैश्विक महाशून्य से पृथिवी के अंधेरों और संघर्षों से होती हुई अतिमानसिक एवं आध्यात्मिक अस्तित्व के उच्चतर प्रदेशों तक को क्रमानुसार श्रेणीबद्ध करती है और मानव-जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण सन्दर्भ को, अनुपम, अद्वितीय, ओजस्वी एवं आलंकारिक कविता के द्वारा प्रकाशित करती है। सावित्री सम्भवतः मनुष्य-मन को परात्पर तक उठाने और विस्तीर्ण करने वाली सर्वाधिक प्रभावपूर्ण काव्यात्मक कलाकृति है।"

श्री अरविंद की सम्पूर्ण लेखन-कृतियों के बीच "सावित्री" कई प्रकार से अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। यही एकमात्र ऐसी रचना है जिस पर उन्होंने लम्बे समय तक अथक श्रम, चिंतन एवं कार्य किया। सावित्री का सबसे पहला पाठ सम्भवतः श्रीअरविंद के बड़ौदा निवास काल का है यानि इस सदी के पहले दशक से शुरू करके उन्होंने इसे अपने जीवन के अन्तिम काल तक पुनः-पुनः लिखा एवं दोहराया है। यह सचमुच एक ध्यान देने योग्य सच्चाई है विरल सृजन-क्षमता के अधिकारी श्री अरविंद, जो अपने आदेश मात्र से सृजन को उपस्थित करने में समर्थ थे, एक रचना पर इतना समय और ध्यान दें। उन लोगों ने जो उस समय श्री अरविंद के साथ थे, हमें बताया कि जब श्री अरविंद "आर्य" पत्रिका में धारावाहिक रूप से अपने लेख लिख रहे थे तो वे जब लिखने बैठ जाते थे तो कैसे प्रेरक एवं ओजस्वी शब्द उनकी लेखनी से पन्नों पर बिना प्रयास झरने की तरह उमड़ आते थे। उन दिनों वे कितने ही विभिन्न विषयों पर एक साथ अनवरत लिख रहे थे। दिव्य-जीवन, वेद-रहस्य, गीता-प्रबन्ध, सामाजिक-उत्थान, भारतीय संस्कृति के मूल आधार और योग-समन्वय आदि कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ उन्होंने उन सात वर्षों के दौरान लिखे एवं अपनी मौलिक व्याख्या के साथ प्रस्तुत किये।

तब क्यों श्री अरविंद ने सावित्री को लिखने एवं सँवारने में आधी शताब्दी लगा दी? आखिर "सावित्री" में ऐसी क्या विशेषता है? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

इस महान कृति "सावित्री" का विभिन्न पाठान्तरों में पुनर्लेखन अपने में दिलचस्प कहानी है। यहाँ हम उसके कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे। सम्भवतः श्री अरविन्द ने सावित्री का प्रथम पाठ उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्ष में लिखा था। उसी समय उन्होंने दो अन्य वर्णात्मक लम्बी कविताएँ "उर्वशी" तथा "प्रेम एवं मृत्यु" भी

लिखी थी। लेकिन सावित्री की कथा, जो महाभारत के वन पर्व में उल्लेखित है, श्रीअरविंद के लिए एक विशेष आकर्षण रखती थी। ये तीनों ही रचनाएँ- "उर्वशी," "प्रेम एवं मृत्यु" तथा "सावित्री" लगभग एक ही कथा-वस्तु पर आधारित तीन अलग-अलग रचनाएँ हैं। इन तीनों के आख्यान का मुख्य विषय है- प्रेम, मृत्यु और पृथ्वी पर जीवन। "उर्वशी" में पुरुरवा उर्वशी का अनुसरण करता है जब वह सहसा उसे छोड़ वापस अपने स्वर्गलोक चली जाती है। वह उससे पुनः जुड़ जाता है पर इस मिलन के लिए उसे एक कीमत चुकानी पड़ती है। उसे अपना पृथ्वी-जीवन, अपना राज-पाट और अपने स्वजन छोड़ने पड़ते हैं। "प्रेम एवं मृत्यु" में प्रियम्बदा की सर्प-दंश से मृत्यु हो जाती है और उसका प्रेमी रुरु पाताल तक उसकी खोज में जाता है लेकिन इससे पहले कि वह अपनी प्रियतमा प्रियम्बदा को लेकर पृथ्वी पर लौटे, उसे भी एक कीमत चुकानी पड़ती है। वह यह कि उसे भी अपने पृथ्वी-जीवन का आधा भाग अर्पित करना पड़ता है। इन दोनों ही आख्यानों में प्रेम मृत्यु पर विजयी होता है, लेकिन उसकी कीमत है पृथ्वी-जीवन का त्याग।

सावित्री आख्यान में सत्यवान की मृत्यु हो जाती है और सावित्री यमलोक तक उसके पीछे जाती है। वह अत्यन्त धैर्य एवं साहस से अन्धकार और मृत्यु से संघर्ष करती है और अन्ततः उसका प्रेम विजयी होता है। वह सत्यवान के साथ जीवन बिताने हेतु पृथ्वी पर वापस लौट आती है। वह पृथ्वी-जीवन की बलि नहीं देती। इस पौराणिक गाथा के प्रति श्री अरविन्द का यही विशेष आकर्षण था।

श्री अरविंद ने महाभारत की मूल कथा के विषय में हमें बताया है :-

"महाभारत में सावित्री-सत्यवान की कथा, दाम्पत्य प्रेम की मृत्यु पर विजय के रूप में वर्णित की गई है। लेकिन यह उपाख्यान भी अन्य अनेक मानवीय कथाओं की तरह वैदिक-युग चक्र का एक प्रतीकात्मक रूपक है। सत्यवान एक ऐसी मानवी आत्मा का प्रतीक है जो अस्तित्व के "दिव्य सत्य" को अपने में संजोए हुए है, लेकिन पृथ्वी लोक में आकर अज्ञान और मृत्यु की पकड़ में आ गई है। सावित्री "दिव्य शब्द", "सूर्य" की आत्मजा, "सर्वोच्च सत्य की देवी है" जो "पृथ्वी" पर आई है और उसे बचाने के लिए जन्मी है। "अश्वपति", अश्वों का स्वामी, सावित्री का मानवी पिता व तपस्या का स्वामी है; आध्यात्मिक धीरता की वह संचित शक्ति है जो हमें मृत्युलोक से अमरता के लोक तक ले जाने की क्षमता रखती है। द्युत्तमसेन, दीप्तिमान पितरों का मालिक और सत्यवान का पिता है। वह "दिव्य मन" है जो धरती पर आकर अंधा हो गया और जिसने अपना ऐश्वर्यपूर्ण स्वर्गीय राज्य खो दिया है। तो भी महाभारत में यह कथा केवल एक प्रतीक कथा मात्र नहीं है, क्योंकि इसमें चारित्रिक गुणों का मानवीकरण नहीं हुआ है वरन् वे उन जीवन्त एवं सचेतन "शक्तियों" के अवतरण या मूर्त रूप हैं जिनके ठोस सम्पर्क में हम आ सकते हैं और वे शक्तियाँ मानव देह इसलिए धारण करती हैं कि वे मनुष्य की

मदद कर सकें और उसे वह रास्ता दिखा सकें जो पार्थिव स्तर से दिव्य चेतना एवं अमर जीवन की ओर ले जाता है।"

श्री अरविंद ने महाभारत के इस कथानक को चुना और इसे नये जीवन के स्पन्दनों से भर दिया। परिणामस्वरूप सावित्री श्री अरविंद के सन्देश और अन्तर्दर्शन की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति बन गई। माता जी को बहुत पहले लिखे अपने एक पत्र में श्री अरविंद लिखते हैं।

"स्वर्ग हमने जीत लिए हैं लेकिन पृथ्वी नहीं कर पायें हैं। किन्तु योग की पूर्णता, जैसा कि वेदों का सिद्धान्त है, पृथ्वी और स्वर्ग को एक समान बनाने और एक करने में है।"

सम्भवतः श्री अरविन्द विश्व के दार्शनिकों में से एकमात्र ऐसे दार्शनिक हैं जो मानवता के ऐहिक भविष्य (Terrestrial future) में विश्वास रखते थे अर्थात् वे पृथ्वी पर ही एक परिपूर्ण जीवन के दिव्य द्रष्टा थे। दूसरे अन्य सभी आध्यात्मिक दार्शनिक बिना अपवाद यह सिद्ध करते हैं कि पृथ्वी पर मनुष्य के लिए सम्पूर्ण जीवन असम्भव है। इस जीवन को उपलब्ध करने की आशा केवल मृत्यु-पश्चात् के जीवन में ही सम्भव है। श्री अरविन्द का योग इस चमत्कार को सच करने का लक्ष्य प्रस्तुत करता है। पृथ्वी पर ही दिव्य जीवन के अविर्भाव को सच करने का चमत्कार उनके योग का प्रधान लक्ष्य है। सन् 1971 में माताजी ने अपने एक सन्देश में कहा था:-

"श्री अरविन्द विश्व को भविष्य के उस सौन्दर्य का बोध कराने के लिये आये जिसे प्रकट होना है। उन्होंने केवल आशा ही नहीं वरन् उस गौरव का विश्वास दिलाया जिसकी ओर विश्व गतिशील है। यह विश्व कोई दुर्भाग्यपूर्ण घटना नहीं है, अपितु यह एक अद्भुत सृष्टि है जो अपनी अभिव्यक्ति की ओर अग्रसर है। विश्व को भावी सौन्दर्य के विश्वास की जरूरत है और श्री अरविन्द ने उसका आश्वासन हमें दिया है।"

"सावित्री" में वे बार-बार हमें यह आश्वासन देते हैं, बार-बार हम श्री अरविन्द के इन शब्दों को सुनते हैं कि मनुष्य अपने को आगे बढ़ाए और अपने भविष्य के सौन्दर्य को साकार एवं सिद्ध करे। "सावित्री" की इन पंक्तियों में यही प्रबोधन है:-

"ओ प्रबल शक्ति द्वारा आक्रान्त, भाग्य द्वारा धकेली मानव जाति!

ओ एक अनन्त विश्व में तुच्छ साहसिकों

और बौनी मानवता के कैदी मनुष्यों!

कब तक डोलते रहोगे तुम, मन की चक्राकार पटरियों पर

अपने क्षुद्र अहंकार एवं तुच्छ विषयों के चारों ओर?

किन्तु तुम नहीं बने थे इस स्थायी लघुता में सिमट जाने के लिए

और ना ही जन्मान्तरों के निष्फल पुनरागमन हेतु हुआ था तुम्हारा सृजन।

अमरता की सार सत्ता से उद्धूत तुम्हारा निर्माण हुआ था।
 एक द्रष्टा, एक बलशाली सृजेता तुममें निहित है;
 एक "आलौकिक महान्" तुम्हारे जीवन पर चिन्तन करता है;
 सर्व समर्थ अनन्त शक्तियाँ तुम्हारी प्रकृति के कोषाणुओं में छुपी हैं,
 एक महान् "नियति" तुम्हारे निकट प्रतीक्षारत है,
 यदि यह क्षणभंगुर भौतिक जीवन चाहे
 तो "परात्पर योजना में अपने कार्यों का कर सकता है समावेश।
 ओ भू-रूपान्तर के प्रणेताओं, तुम्हें दी गई है वह क्षमता
 कि तुम आत्मा के दुर्गम प्रदेशों को पार करो
 और स्पर्श करो बलदायिनी जाग्रत "माता" का.....
 और इस हाड़-माँस की देह में ही, मिलो उस सर्वशक्तिमान से
 और अनगिनत देहधारियों का जीवन बनाओ अभिन्न, "एक"।

(पर्व 4, सर्ग 3, पृष्ठ 370)

यह अब स्पष्ट हो जाना चाहिए कि क्यों सावित्री उपाख्यान ने श्री अरविन्द को इतना आकृष्ट किया था। सावित्री के परम शौर्य में उन्होंने बीज रूप में पृथ्वी-जीवन की दिव्यता का सांकेतिक अनुमोदन देखा और पुनः-पुनः उस कथा को हाथों में लिया। जैसे-जैसे उन्होंने अपने रूपान्तर योग में उन्नति की, उच्चतर चेतना की चोटियों पर महान् सिद्धि के दर्शन किये, उन्होंने सावित्री काव्य को चेतना के उसी स्तर से लिखने का प्रयास किया। अपने किसी एक पत्र में उन्होंने इन शब्दों में अपने इस प्रयास का उल्लेख करते हुए लिखा था:-

"मैंने अपने उत्थान के लिए सावित्री को साधन के रूप में अपनाया। एक विशेष मानसिक धरातल से मैंने इसे लिखना प्रारम्भ किया था। हर बार जब मैं चेतना के और ऊँचे स्तर पर पहुँचता, मैं इसे पुनः उसी स्तर के अनुरूप लिखता रहा। वस्तुतः सावित्री कोई ऐसी कविता नहीं जो शुरू हुई और समाप्त हो गई, वरन् यह मेरी प्रयोग की ऐसी भूमि है, जहाँ अनवरत यह परखा जा सकता है कि अपनी यौगिक चेतना से कोई कितनी उत्कृष्ट कविता लिख सकता है और वह कितनी सृजात्मक हो सकती है।"

ये शब्द प्रमाणित करते हैं कि "सावित्री" की कितनी उच्च गरिमा है, कितनी श्रेष्ठता एवं मूल्य-परकता है। वस्तुतः यह कृति श्री अरविन्द की अपनी चेतना की गहन गम्भीर प्रतिमूर्ति है। हमें ऊपर उठने के लिए केवल अपने को "सावित्री" को समर्पित कर देना है और हमारा यह प्रयास हमें श्री अरविन्द की चेतना से जीवन्त सम्पर्क कराने में सफल होगा।

बहुत से लोग आश्चर्य करते हैं कि श्री अरविन्द ने "आर्य" के पाँच हजार पृष्ठों, जिनमें दिव्य-जीवन, योग- समन्वय, सामाजिक-विकास, मनोविज्ञान एवं गीता-प्रबन्ध जैसे महान् ग्रन्थ शामिल हैं, को लिखने के पश्चात् भी सावित्री को लिखा जबकि अपनी इन कृतियों में उन्होंने दिव्य-जीवन का विशद वर्णन किया है, उसके सिद्धान्त, प्रणाली एवं उसके अभ्यास की विधि का व्यक्ति के लिए भी और समष्टि के लिए भी इतना खुलासा कर दिया है, , तब फिर क्यों उन्होंने "सावित्री" को लिखने में इतना श्रम किया व समय लगाया?

विद्वानों ने इस प्रश्न के कई उत्तर दिये हैं और अपने-अपने समाधान प्रस्तुत किये हैं। मैं अपनी सरल बुद्धि से इस प्रश्न का उत्तर इन शब्दों में दे रहा हूँ:-

"पूर्ववर्ती अवतार भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को भगवद्गीता का साक्षात् दर्शन कराया और उसकी अभीप्सा पूरी की। लेकिन साथ ही उन्होंने अपनी मधुर बाँसुरी बजाकर सम्मोहक धुन से सरल गोपियों की आत्माओं को विमुग्ध एवं विमूर्च्छित कर दिया और फिर अपनी चेतना की अभिन्नता में उन्हें उठाकर वशीभूत कर लिया। गोपियाँ प्रभु की बाँसुरी के मधुर सम्मोहन में डूब गईं और उन्होंने बिना प्रयास अपने को समर्पित एवं न्यौछावर कर दिया। अपने नये अवतार में प्रभु ने "आर्य" के लेखों में नई भगवद्गीता की रचना की। आने वाले युग के लिये नये योग- "अतिमानसिक योग" का उद्घाटन किया और हम सबके प्रति अपनी अनन्त करुणा एवं प्रीतिवश हमारी गोपीरूप आत्माओं के लिए कुछ और अधिक देने की आवश्यकता का अनुभव किया और "सावित्री" के रूप में आनन्दमय आत्मसंगीत हमको प्रदान किया। हमें पूर्ववर्ती गोपियों के समान सावित्री के माधुर्य में, उसकी लय-ताल एवं मान्त्रिक प्रभाव में अपने को सौंप देना है और निश्चय ही हम चेतना के उच्च से उच्चतर धरातल तक अपने को उठा हुआ पायेंगे। सावित्री श्री अरविन्द की असीम कृपा है; यह नये युग का मंत्र है जिसे श्री अरविन्द और माताजी पृथ्वी पर लाये हैं।"

एक उत्कृष्ट विद्वान् और महान् योगी, श्री कृष्णप्रेम ने सावित्री की गहन महत्ता को समझा और पहचाना था। उन्होंने लिखा था:-

"श्री अरविन्द ने उस खाई को पाट दिया जो मानवी अन्तःकरण में सदियों से मुँह बाएं खड़ी थी। प्राचीन काल में कविता सबसे ऊपर एक ईश्वरीय ज्ञान थी, दैवी सन्देश थी। इसकी विषय-वस्तु में वह शाश्वत सत्य प्रकट होता था जो सबके हृदय में निवास करता है। कवि दृष्टा था, देवदूत था, एक जादूगर था और उसकी वाणी मंत्र एवं वशीकरण थी...। धीरे-धारे समय के आत्म-दम्भ (विभाजित मन, यानि आत्म-हंता) की वृत्ति बढ़ती गई...। एक दो में बंट गया और दिमाग ने स्वयं को हृदय से पृथक् मान लिया, ज्ञान से भावना पृथक् हो गई...। सावित्री ना तो विषयमूलक कल्पना है, ना ही एक दार्शनिक

विचार वरन् विश्व के असली आन्तरिक सद्-स्वरूप का एक अन्तर्दर्शन है, एक प्रगटन है- भूः, भुवः, स्वः विश्वों की वह सीढ़ी जो हमारी दृष्टि के समक्ष स्वयं को प्रकट कर देती है...। ऊपर के प्रकाश लोक, नीचे के अन्धकार लोक और फिर हम जीवन को अनवरत चक्राकार घूमते भी देख लेते हैं...। साथ ही यह कृति अत्यन्त महत्ता का शुभ-लक्षण और आशा है, जो निराशा और अन्धकार के इस युग में कविता बनकर प्रकट हुई है। आइये, हम इस "ऊषा" का स्वागत करें।"

सावित्री के विषय में उसके सन्देश को जानने वाला माताजी से अधिक अधिकारी और कौन होगा? वे इसके विषय में कहती हैं-

"सावित्री" एक प्राकट्य है, दैवी सन्देश है, ध्यान है, शाश्वत की खोज है। सावित्री को पढ़ना वास्तव में योग का अभ्यास करना है, आध्यात्मिक एकाग्रता पाना है; व्यक्ति इसमें वह सब कुछ पा सकता है जो भगवान् का साक्षात्कार करने के लिए आवश्यक है; योग का हर पक्ष, हर पहलू, उसमें आगे बढ़ने का हर कदम, इसमें उपलब्ध है। साथ ही अन्य सभी योग-क्रियाओं के रहस्यों का भी इसमें समावेश है। यदि कोई बहुत गम्भीरतापूर्वक इसकी हर पंक्ति में उद्धाटित सत्य का अनुसरण करे तो वह निश्चय ही अतिमानसिक योग के रूपांतर तक पहुँच जायेगा। यह सचमुच ही अचूक पथ-प्रदर्शक है जो कभी भी अपनी मदद का परित्याग नहीं करता और सदा उसके समीप उपस्थित है, जो इस मार्ग का अनुसरण करना चाहता है। सावित्री की प्रत्येक पंक्ति एक सिद्ध मंत्र की तरह है और मैं इसे दोहराया करती हूँ। शब्द इस ढंग से व्यक्त एवं व्यवस्थित किये गये हैं कि उनके लय की गूँज हमें मूल ध्वनि तक ले जाती है जो "ओम्" है।"

सावित्री श्री अरविन्द का पूर्ण रूपान्तर योग है। यह योग प्रथम बार पृथ्वी चेतना तक आया है। यह आध्यात्मिक उत्कर्ष की अनुपम कृति है, अद्वितीय रचना है। जितना अधिक तुम इसके सान्निध्य में प्रवेश करते हो, उतना ही ऊपर उठा लिए जाते हो। यह सर्वोत्कृष्ट अमूल्य देन है जो श्री अरविन्द ने मनुष्य को प्रदान की है। अकेली यह रचना ही तुम्हें सबसे ऊपरी सीढ़ी से जोड़ देने के लिये पर्याप्त है। यदि तुम सचमुच इस पर ध्यान एकाग्र करो तो समस्त सम्भावित सहायता तुम्हें उसके द्वारा मिलेगी। वे लोग जो योगपथ का अनुसरण करना चाहते हैं उन्हें सावित्री से ठोस मदद मिली है; मानो स्वयं भगवान् तुम्हें हाथ पकड़कर तुम्हारे लक्ष्य की ओर ले जा रहे हैं। प्रत्येक प्रश्न, चाहे वह कितना भी व्यक्तिगत क्यों ना हो, सावित्री में अपना उत्तर पा लेता है क्योंकि इसमें जीवन की हर कठिनाई को खोज लिया गया है और जय कर लिया गया है। सचमुच ही इसमें योग-जीवन को साधने का हर निर्देश, हर संकेत संलग्न है, विद्यमान है। श्री अरविन्द ने इस एक अकेली पुस्तक में अरिवल ब्रह्माण्ड को समाविष्ट कर दिया है। यह एक अद्भुत, गरिमापूर्ण और अतुलनीय रचना है, जो "सम्पूर्ण" है।

माताजी ने हमें यह निर्देश दिया है कि हम सावित्री को कैसे पढ़ें? यह तो मानी हुई बात है कि सावित्री एक अलग किस्म की रचना है। लेकिन माताजी हमें प्रोत्साहित करते हुए कहती हैं कि हमें सावित्री को अपनी साधना का अंग बनाकर पढ़ना चाहिए। वे निर्देश करती हैं:-

"इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम इसे नहीं समझ पा रहे हो, लेकिन इसे हमेशा पढ़ो। तुम पाओगे कि हर बार जब तुम इसे पढ़ते हो, तुम्हारे समक्ष कुछ नवीन तथ्य प्रकाशित होगा। तुम हर बार कुछ नयी अनुभूति, नया बोध महसूस करोगे। लेकिन तुम्हें सावित्री को दूसरी किसी पुस्तक या अखबार की तरह नहीं पढ़ना चाहिए। तुम्हें अन्य विचारों से रहित, शान्त और खुले दिमाग से इसे पढ़ना चाहिए, इस पर अपना ध्यान एकाग्र करना चाहिए। तब उन छपे हुए पन्नों से शब्द, लय, छन्द एवं स्पन्दन सीधे तुम्हें एकाग्र दृष्टि से देखते प्रतीत होंगे, अपनी छाप तुम्हारे हृदय व मन पर अंकित करेंगे और तुम्हारे प्रयास बिना ही वे अपना अर्थ स्वयं ही तुम्हारे सामने खोलते प्रतीत होंगे।"

"मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ," माताजी कहती हैं, "जो व्यक्ति योग करने का इच्छुक है, उसके लिए सच्चा प्रयास करता है और उसकी ऊर्जा को अपने अंदर महसूस करता है, वह सावित्री के द्वारा योग की सीढ़ी के अन्तिम सोपान पर चढ़ने योग्य बन जाएगा, उस रहस्य को ढूँढ निकालने में सक्षम बनेगा जो "सावित्री" प्रस्तुत करती है और यह सब उपलब्धि वह गुरु की मदद के बिना पा सकेगा। साथ ही वह इस योग को किसी भी स्थान पर रहकर कर सकने में समर्थ होगा।"

वास्तव में सावित्री सर्वोच्च ज्ञान है, समस्त दर्शनों से ऊपर है, मनुष्य के सभी धर्मों से ऊपर ऊँचे स्थान पर है। यह आध्यात्मिक पथ है, यह योग है, तपस्या है, साधना है, अपनी अकेली एकमात्र सत्ता में यह सब कुछ है। यह उस साधक को अपने स्पन्दनों से भर देती हैं जो इन्हें ग्रहण करने की क्षमता रखता है- चेतना के हर स्तर, हर अवस्था से आने वाले सच्चे स्पन्दन। यह अतुलनीय कृति है, जो अपनी परिपूर्णता में वह सत्य है जो श्री अरविन्द पृथ्वी के लिए उतार लाए हैं।



गतिविधियां

वर्ष 2017- स्वच्छ मन योजना वर्ष

इस परियोजना का लक्ष्य श्री अरविन्द के योग के सार तत्व तक पहुंचना है। विभिन्न प्रणालियां और मन की स्वच्छता पर एकाग्रता इसी योग को अंतिम लक्ष्य बना कर निर्धारित किये गये हैं। इस परियोजना का उद्देश्य हमारे अंदर पनप रहे उस एकचरण को जानना और दूर करना है जो हमारी तार्किक बुद्धि का स्थान लेकर हमारे आत्म कल्याण और आत्मविकास में बाधा पहुंचाता है।

21 जनवरी, 2017:

मदर इंटरनेशनल स्कूल में श्री दलाई लामा का आगमन

को आश्रम ने 'हाल ऑफ ग्रेस' में श्री दलाई लामा का स्वागत किया। मदर इंटरनेशनल स्कूल की छात्राओं ने कार्यक्रम का आरम्भ शांति पाठ व सुसंगत नृत्य साथ किया। इस अवसर पर बोलते हुए श्री दलाई लामा ने हमें भूतकाल को देखते रहने के बजाय वर्तमान में मानव की मूल सकारात्मक व दयालु प्रकृति के अनुसार भविष्य निर्माण तथा विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति के द्वारा शिक्षा में निरन्तर खोज करते हुए विकास का संदेश दिया तथा व्यक्तिगत व देशगत सीमाओं से उपर उठ कर सम्पूर्ण मानवता की शांति व प्रसन्नता के लिये कार्य करने के लिये प्रेरित किया। एकत्वीकरण के लिये उन्होंने भारत की भूमिका व इसकी संभावनाओं पर अत्यधिक महत्व दिया। कार्यक्रम के समापन में उनके द्वारा सभी विद्यार्थियों के प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त सारगर्भित, सरल व मनोरंजक रूप में दिये गये।

7 फरवरी, 2017

करुणा दीदी को भावपूर्ण विदाई

हमारी प्रिय करुणा दीदी की स्मृति में दिनांक 7 फरवरी, 2017 को संध्या 6 बजे से सायं 7.30 बजे तक श्री अरविन्द आश्रम, दिल्लीशाखा के ध्यान कक्ष में प्रार्थना सभा का आयोजन किया गया। उनके सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों ने अत्यंत हृदय स्पर्शी शब्दों में उनकी स्मृति में अपने उद्गार व्यक्त किये। कार्यक्रम का संपूर्ण विवरण इसी अंक में 'करुणामयी दीदी - एक दिव्य व्यक्तित्व' के अंतर्गत दिया जा रहा है।

12 फरवरी, 2017

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा का 61वां स्थापना दिवस-

अत्यन्त उत्साह के साथ मनाया गया। प्रातः 10 बजे रविवार सत्संग के समय दिल्ली शाखा के कुछ ऐतिहासिक चित्र दिखाये गये। दिन में 2 बजे 'हॉल आफ जॉय' में श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा पर फिल्म दिखायी गई तथा संध्या 5 बजे बीरभूम पश्चिमी बंगाल सांस्कृतिक उत्थान की श्री अरविन्द सोसायटी (Sri Aurobindo Society for Cultivation of Culture, Birbhum, West Bengal) के द्वारा "Tales of Prison life" पर नृत्य और नाटक प्रस्तुत किये गये जिन्हें बहुत सराहा गया।



